॥ सूची ॥

विषय   प्रथमोऽध्यायः   पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

ओ३म्

विदित होवे कि इस बृहत्सन्ध्या में जितने वैदिक मन्त्र हैं उनके अर्थ श्री ५ स्वामिहंसस्वरूपकृत 'मन्त्रप्रभाकर' नामक ग्रन्थ में दिये गये हैं।

इस पुस्तक में जहां२ अशुद्धियां हैं पाठक गण उनको "शुद्धाशुद्धपत्र" में देखलेवेंगे।

ॐ नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय॥

श्रीस्वामिहंसस्वरूप

कृत

त्रिकुटी विलास।

VOL. I.	भाग १
Chapter I.	अध्याय १

ॐ पूर्णपरब्रह्मणे नमः
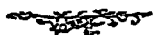
ॐ शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥ शन्नो वातः पवतां शन्नस्तपतु सूर्य्यः। शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

शुक्ल यजुः अध्याय ३६ मंत्र ६, १०।

त्वरितनिहतकंसं योगिहृद्याब्जहंसं यदुकुमुदसु-चन्द्रं रक्षणे त्यक्ततन्द्रम् । श्रुतिजलनिधिसारं निर्गुणं निर्विकारं हृदय भज मुकुन्दं नित्यमानन्दकन्दम् ॥ १ ॥

अथ सन्ध्या ।

प्रथम सन्ध्या शब्द का अर्थ यह है कि "सम्यग्ध्यायन्ति सम्यग्ध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या," अर्थात् अच्छे प्रकार से ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जावे परमेश्वर का जिस में वह सन्ध्या है, फिर रात और दिन के संयोग अर्थात् सन्धि को भी, जो प्रातः काल सूर्योदय और सायंकाल तारादर्शन से पूर्व होती है, सन्ध्या कहते हैं इस कारण दोनों सन्ध्याओं में सब मनुष्यों को विशेष कर ब्राह्मणों को तो सन्ध्या करनी अति आवश्यक है ।

प्रमाण—अहोरात्रस्य यः सन्धिः सूर्यनक्षत्र वर्जितः । सातु सन्ध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ नागदेवः ।

तस्माद्ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य योगे सन्ध्यामुपासीत । षड्विंश ब्राह्मण प्रपाठक ४ खंड ५

(साङ्ख्यायनगृह्ये)

अरण्ये समित्पाणिः सन्ध्यामुपास्ते नित्यं वाग्यतः उत्तरपराभिमुखोन्वष्टम दिशमानक्षत्रदर्शनात । अतिक्रान्तायां महाव्याहृतीः स्वस्त्ययनान्यपि-जप्त्वा एवम् प्रातः प्राङ्मुखस्तिष्ठन्नाम-ण्डलदर्शनात् ॥

टी०—वन में कुशा हाथ में लियेहुए चुप मौन साधन कियेहुए नित्य उत्तरपश्चिम कोन अर्थात् वायु-कोन की ओर मुख कर * तारादर्शन तक 'सायं सन्ध्या' करे, यदि सन्ध्या का समय बीतगयाहो तौभी केवल महाव्याहृति, गायत्री, तथा स्वस्तिवाचन मन्त्रों को जप कर सन्ध्योपासन करले और इसी प्रकार प्रात काल पूर्वउतर (ईशान कोन) अथवा केवल पूर्व दिशा बैठकर सूर्योदय पर्य्यन्त सन्ध्योपासन करे, उक्त प्रमाण से 'मध्याह्नसन्ध्या' का निरूपण नहीं हुआ इस कारण नीचे लिखे 'आश्वलायन गृह्यसूत्र' से मध्याह्नसन्ध्या भी निरूपण कीजाती है।

* कब से तारा दर्शन और सूर्य्योदय तक सायं औ प्रात सन्ध्या करे आगे वर्णन कियागया है।

(आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे)

अथ सन्ध्यामुपासीतेत्याचार्य्यो या-
वदहोरात्रयोः सन्धौ यश्च पूर्वाह्णापरा-
ह्णयोस्तत्कालभवा देवता सन्ध्या तामु-
पासीत ॥

टीका—जितने काल तक दिन रात की सन्धि अथवा पूर्वाह्न और अपराह्न की सन्धि अर्थात् मध्याह्न काल होता है उतने काल की सन्ध्या देवसन्ध्या कहलाती है, इसलिये इन सन्धियों के समय सदा देव सन्ध्या करने की चेष्टा करे।

सज्योतिष्याज्योतिषो दर्शनात्सो-
ऽस्याः कालः सा सन्ध्या तत्सन्ध्यायाः
सन्ध्यात्वम्। पड० ब्रा० प्रपा० ४ खंड ५

टीका—प्रातःकाल की सन्ध्या का ठीक समय ज्योतिदर्शन अर्थात् सूर्य्योदय से पहिले और सायंकाल की सन्ध्या का ठीक समय अप्रकाशदर्शन अर्थात् सूर्य्यास्त से पहले ही से है, इसी को सन्ध्याकाल

जानना और इनहीं कालों में जो सन्ध्योपासन की क्रिया कीजाती है वही सन्ध्या है।

॥ देवसन्ध्याकालः ॥

अग्निस्मृतौ—सन्ध्याकालः प्रागुदयाद्विप्रस्य द्विमुहूर्तकः। क्षत्रियस्य तदर्धं स्यात्तदर्धं स्याद्विशोऽप्युत ॥

टीका—सूर्य्योदय और तारादर्शन से पहिले ब्राह्मणों के लिये दो मुहूर्त, क्षत्रियों के लिये एक मुहूर्त और वैश्यों के लिये आधा मुहूर्त, सन्ध्या कासमय है।

संवर्त्तः—प्रातःसन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि। सादित्यां पश्चिमांसन्ध्यामर्द्धास्तमितभास्कराम् ॥ १ ॥ **मार्कण्डेयपुराणे**—पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमांसदिवाकराम्। उपासीतयथान्यायं नैनांजह्यात्कदाचन ॥ २ ॥

टीका—फिर संवर्त्त का वचन है कि नक्षत्रों के सहित प्रातः सन्ध्या और आधा सूर्य्य के सहित सायं सन्ध्या की उपासना करनी चाहिये ॥ १ ॥ फिर मार्कण्डेय ने भी लिखा है कि पूर्वासन्ध्या नक्षत्रों के

सहित और पश्चिमा सूर्य्य के सहित यथाविधि आरंभ करनी चाहिये। यह उपासना कभी न छोड़े ॥ २॥

हारीतः—पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथा विधि। गायत्री मभ्यसेत्तावद्यावदादित्य दर्शनात् ॥ १॥ उपास्य पश्चिमां सन्ध्य स सूर्य्यां च यथाविधि। गायत्री मभ्यसेत्ताव द्यावत्तारा न पश्यति ॥ २॥ याज्ञवल्क्यः—जपन्नासीत सावित्रीम्प्रत्यगा तारकोदयात्। सन्ध्यां प्राक्प्रातरेवं हि तिष्ठेदासूर्य्यदर्शनात् ॥ ३॥

टीका—पूर्वा अर्थात् प्रातःसन्ध्या तारा रहते आरंभ करके सूर्य्योदय तक गायत्री जपता रहे॥ १॥ और इसी प्रकार पश्चिमा अर्थात् सायंसन्ध्या सूर्य्य रहते आरंभ करके तारा दर्शन तक गायत्री जपता रहे ॥ २॥ योगी याज्ञवल्क्य भी कहते हैं कि सायं सन्ध्या में गायत्री जपता हुआ तारा दर्शनतक।और प्रातःसन्ध्या में जपता हुआ सूर्य्यदर्शन तक ठहरे ३।

एवम् प्रकार ऊपर लिखे प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि दो घड़ी रात्री से सूर्य्योदय तक प्रातःकाल की सन्ध्या और आधा सूर्य्य अस्त होगये हों तब से

तारा उदय होने तक सायंकाल की सन्ध्या का उत्तम समय है और इसी कारण इतने समय की सन्ध्या को देवसन्ध्या कहते हैं।

सन्ध्या मुख्यकाल निर्णय।

अब जानना चाहिये कि काल भेद से उत्तमा, मध्यमा, और कनिष्ठा तीन प्रकार की सन्ध्या है।

धर्मसारे—उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्त तारका। अधमा सूर्य्यसहिता प्रातःसन्ध्या त्रिधास्मृता ॥ १ ॥ उत्तमा सूर्य्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा। कनिष्ठा तारकोपेता सायंस सन्ध्या त्रिधास्मृता ॥ २ ॥

टीका—अर्थात् प्रातःकाल में तारा दर्शन होते आरंभ हो वह 'उत्तमा,' जो तारा लुप्त होजाने पर आरंभ हो वह 'मध्यमा,' और जो सूर्य्योदय के पश्चात् आरंभ हो वह 'कनिष्ठा' है ॥ १ ॥ ऐसे सायं काल जो सूर्य्य रहते आरंभ हो वह 'उत्तमा,' जो सूर्य्य अस्त होने पर आरंभ हो वह 'मध्यमा,' और जो तारा उदय होजाने पर आरंभ हो वह 'कनिष्ठा' है ॥ २ ॥

प्रमाण मण्डनः—मुख्यकाले यदाऽवश्यं कर्म कर्त्तुं न शक्यते। गौणकालेपि कर्तव्यं गौणोप्यत्रेदृशोभवेत् ॥ १ ॥ उदयास्तमयादूर्ध्वं यावत्स्याद्घटिकात्रयम्। तावत् सन्ध्या मुपासीत प्रायश्चित्तमतः परम् ॥ २ ॥

टीका—अर्थात् मुख्यकाल में जो सन्ध्या न करसकता हो तो गौणकाल में अवश्य करे ॥ १ ॥ उदय से और अस्त से उपरांत केवल तीन घड़ी तक सन्ध्या करने का गौण समय है, इस से अधिक काल बीतजाने पर सन्ध्या करने से प्रायश्चित्त होता है। २।

प्रातः और सायं सन्ध्या का निर्णय ऊपर भली भांति हो चुका, अब मध्याह्नसन्ध्या का समय स्पष्ट है इस में प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है, दिन को पांच भाग करके जो मध्य भाग हो उस में मध्याह्न सन्ध्या करनी चहिये।

अब तीनों काल की सन्ध्या के नाम औ स्वरूप वर्णन किये जाते हैं ।

'प्रातः सन्ध्यास्वरूपवर्णनम्,' बृहत्पाराशरः— पूर्वसन्ध्या तु गायत्री ब्राह्मणी हंसवाहना । रक्तपद्मारुणा देवी रक्तपद्मासनस्थिता ॥ १ ॥ रक्ताभरणभासाङ्गा रक्त माल्याम्बरा तथा । अक्षमाला स्रुवाधारा चारुहस्ताऽमरार्चिता ॥ २ ॥ प्रागादित्योदयाद्विद्वान्मुहूर्ते वैधसे सति । उत्थायोपासयेत्सन्ध्यां यावत्स्यादर्कदर्शनम् ॥ ३ । विश्वमातः सुराभ्यर्च्ये पुण्ये गायत्रि वैधसि । आवाहयाम्युपास्त्यर्थं एह्येनोऽस्ति पुनीहि माम् ॥ ४ ॥

'मध्याह्नसन्ध्यास्वरूपवर्णनम्-' बृहत्पाराशरः—सन्ध्या माध्याह्निकी श्वेता सावित्री रुद्रदेवता । वृषेन्द्रवाहना देवी बालात्रि शिखधारिणी ॥ १ ॥ श्वेताम्बरधरा श्वेता नाना भरण भूषिता । श्वेतस्रगक्षमालापि कृतानुरक्त शङ्करा ॥ २ ॥ जलाधारा धरा धात्री धरेन्द्राङ्ग

भवाभवा । स्वभाविभातभूराधा सुरौघवृतपद्द्व-
या ॥ ३ ॥ मातर्धत्रानि विश्वेशि विश्वविश्वजना-
र्चिते । शुभे वरे वरेण्येहि आहूते हि पुनीहि
माम् ॥ ४ ॥

'सायंसन्ध्यास्वरूपवर्णनम्.' वृह-
त्पाराशरः—सन्ध्या सायन्तनी कृष्णा विष्णु
देवा सरस्वती । स्वर्गगा कृष्णवस्त्रा तु शङ्खचक्र
गदाधरा ॥ १ ॥ कृष्णाभ्र भूषणैर्युक्ता सर्वज्ञान-
मया वरा । सर्ववाग्देवता सर्वा ब्राह्मयादिव
चसि स्थिता ॥ २ ॥ वीणाक्षमालिका चारुहस्ता
स्मितवरानना । चतुर्दशजनाभ्यर्च्या कल्याणी
शुभकृत् सदा ॥ ३ ॥ मातर्वागदेवते देवि च-
रेण्ये च वरप्रदे । सर्वमरुद्गणस्तुत्ये आहूते हि
पुनीहि माम् ॥ ४ ॥

॥ भाषा टीका ॥

प्रातःसन्ध्या स्वरूप—प्रातःकाल की सन्ध्या
की मूर्त्ति कैसी है कि, गायत्री नाम से प्रसिद्ध है और
ब्राह्मणी अर्थात् ब्रह्मा की शक्ति है, हंस के ऊपर आरूढ़
है, लाल कमल के समान रक्तवर्ण औ लालही वर्ण

पद्म के ऊपर आसन किये स्थित है ॥ १ ॥ और लाल ही वर्ण के आभूषणों से जिसके अंग चमकरहे हैं, लालही वर्ण की माला, वस्त्र और अक्षमाला धारण किये हुए हैं अथवा (अक्षमाला ध्रुवा धारा) जिस प्रकार अक्षमाला जो सप्तऋषि तिनका आधार ध्रुव है उसी प्रकार अक्षमाला जो वर्णमाला जिसके मध्य में यह स्वयं ध्रुव है, अर्थात् सर्व विद्याओं की आधार है, सुन्दर हस्तवाली है और देवों करके जो प्रार्थना की जाती है, अर्थात् पूजित है ॥ २ ॥ इस प्रकार ध्यान करते हुए विद्वान सूर्य्योदय से पहिले ब्राह्म मुहूर्त में उठकर सूर्य्योदय तक सन्ध्या की उपासना करे और एवं प्रकार प्रार्थना करे कि ॥ ३ ॥ हे विश्वमातः देवताओं करके पूजिता, पुण्य की मूर्ति, गायत्रि, ब्राह्मणि, मैं आप की उपासना के लिये बोलाताहूं. आप यहां आकर मेरेको पापों से पवित्र कीजिये ॥ ४ ॥

मध्याह्नसन्ध्या स्वरूप—मध्याह्नकाल की सन्ध्या सावित्री नाम से प्रसिद्ध है और रुद्राणी अर्थात् रुद्र की शक्ति है, वृषभ (बैल) के ऊपर आरूढ़ है और मस्तक पर तीन शिखा वाले छोटे मुकुटको अथवा हाथ में छोटी त्रिशूल को धारणकिये है ॥ १ ॥

श्वेतवस्त्र नाना प्रकार के श्वेत आभरण और श्वेतही रंग की माला अक्षमाला * के साथ धारण किये शंकर को प्रीतियुक्त करनेवाली है ॥ २ ॥ जल से पृथिवी को माता के समान पोषण करने वाली, पर्वत से उत्पन्न शिव को परमशक्ति, अपनी प्रभा से भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक इत्यादि को शोभायमान करनेवाली, देवताओं से सेवायुक्त दोबार उत्पन्न होकर शिव संग दोबार व्याही जानेवाली है ॥ ३ ॥ हे भवानी! हे विश्व की उत्पन्न करनेवाली सबमनुष्यों से पुजित! हे शुभगुणों से स्तुति की जानेवाली! मैं तुझको अवाहन करता हूं तू मुझको पवित्र कर ॥ ४ ॥

सायंसन्ध्या स्वरूप—सायंकाल की सन्ध्या जो सरस्वती नाम से प्रसिद्ध है, कृष्णरूपा, है, विष्णु की शक्ति है, स्वर्ग में सदा गमन करनेवाली है, कृष्ण वस्त्र अंग में औ शंख चक्र गदादि आयुधों को हाथों में धारणकिये है ॥ १ ॥ जिसकी काली २ टेढ़ी भउहें नानाप्रकार के भूषणों से सुशोभित हैं जो सर्वज्ञानमय अति श्रेष्ठ हैं, सर्वप्रकार वचन रचना

---

* रुद्राक्ष, मूंगा स्फटिक औ माणिक इत्यादि के माला को अक्षमाला कहते हैं।

की शक्ति देनेवाली, औ वचन मात्र से सृष्टि संहार औ पालन करनेवाली है ॥ २ ॥ जो वीणा हाथमें और अक्षमाला गलेमें धारण किये सुन्दर हस्तकमल वाली, जिसके सुन्दर मुखारविन्द पर मन्द २ मुस्क्यान विलास लेरहा है, जो चौदहों भुवन के लोगों से पूजित सदा शुभ औ कल्याणको करनेवाली है ॥ ३ ॥ हे मातः! हे वागदेवते! हे देवि! सबों से वंदना कीजाने वाली सर्वप्रकार के वरों की देनेवाली, मरुद्गणों से स्तुत्य, मैं आपको आवाहन करता हूं, आप मुझको सर्व पापों से पवित्र करें ॥ ४ ॥

सन्ध्यास्थाननिर्णयः ।

शारदायाम्—पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहापर्वत मस्तकम् । तीर्थप्रदेशाः सिन्धूनां सङ्गमः पावनं सरः ॥ १ ॥ उद्यानानि विविक्तानि बिल्वमूलं तटं गिरेः । देवाद्यायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम् ॥ २ ॥ वाचस्पतौ, ईश्वरः—गृहे जपः समः प्रोक्तो गोष्ठे शतगुणः स्मृतः । आरामे च तथाऽरण्ये सहस्रगुण उच्यते ॥ ३ ॥ अयुतः पर्वते पुण्ये नद्यां लक्षगुणस्तु सः । कोटिर्देवालये प्रोक्तोऽनन्तः शिवसन्निधौ ॥ ४ ॥

टीका—शारदा–पुण्यक्षेत्र, नदीतट, गुहा, पर्वत-मस्तक, तीर्थस्थान, नदों औ नदियोंका सङ्गमस्थान, पवित्र, सर ॥ १ ॥ वाटिका, एकान्तस्थान, वेल के वृक्ष का मूल, पर्वत का तट, देवालय, समुद्रकाकूल, और अपना घर, इतने स्थान सन्ध्या करने के हैं ॥ २ ॥ वाचस्पति कहते हैं कि, गृह में जपकरना समान है, औ गोशाला में जपने से शतगुण अधिक फल, वाटिका में औ जङ्गल में सहस्रगुण ॥ ३ ॥ तीर्थतट में लक्षगुण, देवालय में कोटिगुण और शिव के समीप जपने से अनन्तगुण अधिक फल होता है ॥ ४ ॥

सन्ध्योपासने दिग्विचारः ।

लघुव्यास संहितायाम्—प्राङ्मुखः प्रयतो विप्रः सन्ध्योपासन माचरेत् । आसीनः प्राङ्मुखो नित्यं जपं कुर्याद्यथाविधि ॥ १ ॥ वृहत्पाराशरः—ऐशान्याभिमुखो भूत्वा द्विजः पूर्वमुखोऽपि वा । सन्ध्यामुपासयेन्नित्यं यथावत्तन्निवोधत ॥ २ ॥ परिभाषाकर्मप्रदीपे—यत्र दिङ्नियमो नस्याज्जपहोमादिकर्मसु । तिस्रस्तत्रदिशः प्रोक्ता ऐन्द्री सौम्याऽपराजिता ॥ ३ ॥

गौतमः—रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद्दैवं कार्यं सदैवहि ।
शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः ॥ ४ ॥

टीका—लघुव्यास संहिता का वचन है कि, विद्वान वेदपाठी पूर्वमुख सन्ध्या की उपासना करे और पूर्व * ही मुख नित्य विधिपूर्वक गायत्री का जप करे ॥ १ ॥ वृहत्पाराशर :—ईशानकोन वा पूर्वमुख नित्य द्विजों को सन्ध्योपासन यथाविधि करना उचित है॥ २ ॥ परिभाषाकर्म प्रदीपे—जहां जिस क्रियामें दिशा का नियम नहीं वर्णन कियागयाहो वहां ऐन्द्री, सौम्या औ अपराजिता अर्थात् पूर्व . पश्चिम और उत्तर तीनही दिशा समझनीचाहिये ॥ ३ ॥ गौतमः—यदि रात्रि के समय कोई देवसम्बन्धि कार्य्य अथवा शिवपूजन इत्यादि. करानाहो तो सदा पवित्र होकर उत्तर ही मुख करनाचाहिये ॥ ४ ॥

सन्ध्याकर्म्माकरणे दोषः ।

(गोभिलीयगृह्य) अथ य इमां

* सायंसन्ध्या पश्चिम मुख औ मध्याह्न उत्तर मुख करना ।

सन्ध्यां नोपास्ते नाचष्टे न स जयति येतूपासते श्रोत्रिया भवन्तीत्युपनीता श्छेदनभेदनभोजनमैथुनस्वपनस्वाध्या यानाचरन्ति ये सन्ध्याकाले तेश्वशूकर शृगालगर्दभसर्पयोनिष्वभिसम्पद्यमा नास्तमोभिस्सम्पद्यन्ते तस्मात्सायं प्रातः सन्ध्यामुपासीत ।

टीका—अर्थात् जो द्विजाति इस सन्ध्या की उपासना नहीं करता, औ नहीं पढ़ता वह जय नहीं पाता, और जो इसकी उपासना करतेहैं वे श्रोत्रीय होतेहैं और जो उपनीत होकर सन्ध्या में काटना तोड़ना, भोजन करना, मैथुन करना, सोना औ पढ़ना, इन कर्मों को करतेहैं वे कुत्ते, शूकर, गीदड़, गदहा सर्प योनियों में उत्पन्न होते हुए नरकों को प्राप्त होते हैं, इस लिये सायं औ प्रातःकाल में केवल सन्ध्याही करनी चाहिये ।

मनुः—नतिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विज

कर्मणः ॥१॥ मरीचिः—सन्ध्या येन न विज्ञा-
ता सन्ध्या येनानुपासिता । जीवमानो भवेच्छूद्रो
मृतः श्वा चाऽभिजायते ॥२॥ दक्षः—सन्ध्या
हीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यदन्यत्कुरुते
कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥३॥ वसिष्ठः—
सन्ध्याहीनस्तु यो विप्रो ह्यन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ ४ ॥
हारीतः—तस्मान्न लङ्घयेत्सन्ध्यां सायंप्रातः स-
माहितः । उल्लङ्घयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ॥५॥

टीका—मनु— जो पूर्वा अर्थात् प्रातःसन्ध्या
नहीं करता औ जिस करके पश्चिमा अर्थात् सायंसन्ध्या
नहीं उपासना की जाती उसको सर्वप्रकार के द्विज
कर्मों से वाहर निकालदेना चाहिये ॥ १ ॥ मरिचिः—
जिसकरके सन्ध्या नहीं जानीजाती औ नहीं
उपासना कीजाती वह प्राणी जीताहुआ शूद्र है और
मरने पर कुत्ता होकर जन्मलेता है ॥ २ ॥ दक्षः—
जो पुरुष सन्ध्याहीन है वह सदा अपवित्र है और कोई
अन्य कर्म करने के योग्य नहीं, क्योंकि ऐसा पुरुष जो
कुछ कर्म करताहै उसके फलका भागी नहीं होता ॥३॥

वसिष्ठ—जो ब्राह्मण सन्ध्यासे हीन होकर और कर्मोंमें परिश्रम करताहै सो जीतेहुए अपने वंशोंके साथ शूद्र होजाताहै ।४। हारीतः—जो पुरुष सायं औ प्रातःकाल सन्ध्या नहीं करता, वह निश्चय घोर नरक में पड़ताहै ५

॥ सन्ध्याफलम् ॥

अन्यच्च—उद्यन्तमस्तयन्तमादित्य मभिध्यायन्कुर्वन्योब्राह्मणो विद्वान्सकलं भद्रमश्नुते । तैत्तिरीय अ० २ प्रपा० २ अनु० २

टीका— सूर्य्य के उदय औ अस्त होतेहुए जो विद्वान ब्राह्मण सूर्य्य का ध्यान औ गायत्री का जप इत्यादि अर्थात् सन्ध्या करताहै वह सर्व सुख को प्राप्त करताहै ।

अत्रिः—सन्ध्यामुपासते येतु सततं शंसितव्रताः । विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥१॥ याज्ञवल्क्यः— यावन्तोऽस्यां पृथिव्यां हि विकर्मस्थास्तु वै द्विजाः । तेषां वै पावनार्थाय सन्ध्या सृष्टा स्वयम्भुवा ॥ २ ॥ निशायां वा दिवा वापि यदज्ञानकृतं भवेत् । त्रिकाल सन्ध्याकरणात्तत्सर्वं हि प्रणश्यति ॥ ३ ॥ मनुः—

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनोव्यपोहति पश्चिमां-तुसमासीनोमलं हन्तिदिवाकृतम् ॥ ४ ॥ शङ्खः—
अनृतं मद्यगन्धं च दिवामैथुन मेवच । पुनातिवृष-लस्यान्नं येन सन्ध्याद्युपासिता ॥ ५ ॥ विश्वा-मित्रकल्पे—विप्रोवृक्षोमूलमस्यस्य सन्ध्या । वेदाः शाखा धर्मकर्माणिपत्रम् ॥ तस्मान्मूलं यत्न तोरक्षणीयं । छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखाः ॥ ६ ॥

टीका—अत्रिः—जो लोग नियम पूर्वक सन्ध्या की उपासना करतेहैं वे सर्व पापों से छूटकर सनातन ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ याग्यवल्क्यः-जितने द्विज इस पृथ्वीतल में दुष्ट कर्मों में लीन हैं उनके पावन करने के लिये परमात्मा ने सन्ध्या बनाई ॥ २ ॥ रात्रि में अथवा दिन में जोकुछ अज्ञानकृत पाप होतेहैं वे सब त्रिकालसन्ध्या से नाश होजातेहैं ॥ ३ ॥ मनुः—प्रातः सन्ध्या से रात्रि भर के पाप औ सायंसन्ध्या से दिन भर के पाप नाश हो जाते हैं ॥४॥ शङ्खः—झूठबोलना, मद्य को सूंघना, दिनको मैथुन करना, और (वृषल) शूद्र पापी, जो अपने वर्ण से च्युत होगयाहो उसका अन्न खाना इत्यादि पापोंसे वह प्राणी छूट जाताहै जो नित्य सन्ध्योपासन करता है ॥ ५ ॥ विश्वामित्रकल्पे—

विप्ररूपी जो वृक्ष है उसका मूल सन्ध्या है, चारों वेद चार डालियां हैं और जितने धर्म कर्म हैं सब पत्ते हैं, इस कारण मूल को अर्थात् सन्ध्या को सदा यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि जड़ के काटने से न वृक्ष रहसकताहै न डालियां रहसकतीहैं ॥

सन्ध्योपयोगिजलपात्राणि ।

प्रयोगपारिजाते—धाराच्युतेन तोयेन सन्ध्योपास्तिर्विगर्हिता । नद्यां तीर्थे ह्रदे वापि भोजने मृन्मयेपिवा ॥ औदुम्बरे च सौवर्णे राजते दारुसम्भवे । कृत्वा तु वामहस्ते वा सन्ध्योपास्ति समाचरेत् ॥ मरीचिः—गोकर्णाकृतिवत्पात्रं ताम्रं रौप्यं च हाटकम् । जलं तत्र विनिक्षिप्य सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥ आह्निककारिकासु——कांस्येनायसपात्रेण त्रपुसीसकपित्तलैः । आचान्तः शतकृत्वोऽपि न कदाचन शुद्ध्यति ॥

प्रयोगपारिजाते—धारा से गिरतेहुए जल से अर्थात् वर्षा के जल से सन्ध्या करनी निन्दित है, नदी

तीर्थ औ तालाब में, वा मट्टी के बरतन में, उदुम्बर के पात्र में अथवा बांये हाथ में जल लेकर सन्ध्या करे। मरीचि:—तांबा, रूपा, औ सोना, के पात्र में जो गउ के कान ऐसे बने हों जल लेकर सन्ध्या करे। आह्निक-कारिका—कांसा, लोहा, टीन, सीसा, ओ पीतल के पात्र में जल लेकर सन्ध्या न करे, क्योंकि इन पात्रों के जल से सैकड़ों बार भी कोई पुरुष आचमन करे तो वह शुद्ध कदापि नहीं होसकता॥

—०—

यहां तक सन्ध्या के काल, स्थान, दिग् इत्यादि का निर्णय भली भांति होचुका, अब प्रातःकाल बिछायन से उठने के पश्चात् सन्ध्या के आसन पर आने तक शरीर शुद्धि निमित्त कौन २ सा कर्म किस विधिसे करनाचाहिये विस्तारपूर्वक कथन कियाजाताहै। पाठकों को उचित है कि, इन बातों पर भली भांति ध्यान रखें।

प्रातःकालिक कर्म।

'प्रातरुत्थानकाल:' मनु:—ब्राह्मे-

मुहूर्ते बुद्धयेत धर्मार्थावनुचिन्तयेत् । कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेवच ॥ रत्नावल्याम्---ब्राह्ममुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी । तांकरोति द्विजो मोहात्पादकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥ विष्णुपुराणे---रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः । स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने ॥

टीका—मनु कहतेहैं कि, ब्राह्ममुहूर्त में उठकर धर्म, अर्थ, शरीर के रोगों का कारण अर्थात् नाड़ीपरीक्षा इत्यादि और वेद के तत्त्वों का विचार अवश्यकरे । रत्नावल्याम्—ब्राह्ममुहूर्त की निद्रा पुण्यक्षय करनेवाली है, इस कारण जो द्विज मोहवश इस समय सोताहै वह विना * 'पादकृच्छ्र' के शुद्ध नहीं होता । अब वह ब्राह्ममुहूर्त किस समय को कहतेहैं उसे वर्णन करतेहैं । विष्णुपुराणे—रात्रि के पिछले याम अर्थात् पहर के तीसरे मुहूर्त को ब्राह्ममुहूर्त जानना, अर्थात् साढ़ेचार बजे रात्रि से ब्राह्म-

* पापों से शुद्ध होने के निमित्त शास्त्रोक्त विधि से मास पर्य्यन्त विना अन्नजल के अपने को दण्ड देना "कृच्छ्र" कहलाता है तिस के चतुर्थ भाग को "पादकृच्छ्र" कहते हैं ।

८

मुहूर्त आरंभ होता है। पाठकों को स्मरण रहे कि इसी ब्राह्ममुहूर्त से अर्द्धोदय तक अर्थात् दो मुहूर्त में शारीरक शौच औ सन्ध्या समाप्त करलें, मुहूर्त मात्र में बाह्यभूमि से स्नान तक और मुहूर्त मात्रमें सन्ध्या करलें।

उत्थान काले स्वकरतलाद्यवलोकनम्।

यत्राङ्गे वहते वायुस्तदङ्गस्य करस्तलं। सुप्तोस्थितोमुखं स्पृष्टवालभते वाञ्छितंफलम्॥ आचारप्रदीपे—कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती। करमूले स्थितोब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

टीका—बिछावन से उठते वाम अथवा दक्षिण जौन स्वर चलता हो उसी हाथ की रेखा देख मुख पर फेरताहुआ उठे, यदि दोनों स्वर अर्थात् सुषुम्णा चलती हो तो दोनों हाथों की रेखाओं को अवलोकन करे, क्योंकि आचारप्रदीप में कहा है कि हाथ के अग्र भाग में लक्ष्मी, मध्य में सरस्वती और अन्तमें ब्रह्मा की स्थिति है, इसकारण प्रभातकाल में करतलदर्शन अवश्य करे, पश्चात् नीचे लिखे मंत्रों को पढ़तेहुए बिछावन छोड़ भूमि पर पैररखे।

'ग्रहस्तुतिर्वामनपुराणे'

ब्रह्मामुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमि सुतोबुधश्च। गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ १ ॥ 'ऋषिस्तुतिः'-- भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरंगिरश्च मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः। रैभ्यो मरीचिश्च्यवनश्चदक्षः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २ ॥ सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च। सप्त स्वराः सप्त रसातलानि कुर्व० ॥ ३ ॥ सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त। भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त कुर्व० ॥ ४ ॥ पृथ्वी सगन्धा स रसास्तथापः स्पर्शी च वायुर्ज्वलितं च तेजः। नभः सशब्दं महता सहैव कुर्व० ॥ ५ ॥ इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेत्स्मरेद्वा शृणुयाच्च तद्वत्। दुःस्वप्ननाशस्त्विह सुप्रभातं भवेच्च नित्यं भगवत्प्रसादात् ॥ ६ ॥

टी० ग्रहस्तुति—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य्य चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु औ केतु, सब मिल आज मेरे प्रभात को शुभ करें, अर्थात् आज

मेरा सम्पूर्ण दिन मङ्गलमय व्यतीत हो ॥१॥ ऋषि-स्तुति—भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, अङ्गिरा, मनु, पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रैभ्य, मरीचि, च्यवन (कपिलके एक शिष्य) दक्ष ॥२॥ सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि, पिङ्गल, सातों स्वर, सातों नीचेके लोक ॥ ३ ॥ सातों अर्णव (समुद्र) सातों कुलाचल* (पर्वत), सातों ऋषी, सातों द्वीप; सातों वन, भूः, भुवः, स्वः इत्यादि सातों भुवन ॥ ४ ॥ गन्धवती पृथिवी, रस देनेवाला जल, स्पर्शगुणवाला वायु, ज्वालायुक्त अग्नि, शब्दगुणवाला आकाश, सब मिल मेरे प्रभात को शुभ करें ॥ ५ ॥ एवम्प्रकार जो प्राणी नित्य पढ़े, स्मरणकरे औ सुने, तो भगवत् कृपा से नित्यही उसके सर्व दुःख नाशको प्राप्त हों और नित्य दिन उसका शुभ हो ॥ ६ ॥

उक्तप्रकार स्तुति पढ़तेहुए बिछावन से उठ पुण्य-श्लोकजन अर्थात भक्तजनों की भी स्तुति नीचे लिखे मन्त्र से करताहुआ बाहर आवे ।

पुण्यश्लोकजनस्तुतिः ।

आचारमयूखे—पुण्यश्लोको नलो राजा

---

* महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तीमानृक्षपर्वतः
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ।

पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः । पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः ॥ अश्वत्थामा वलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः । कृपःपरशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥ सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम् । जीवेद्वर्षशतं सोऽपि सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा । पञ्चकं ना स्मरेन्नित्यं महापातक नाशनम् ॥

टीका--आचारमयूखे--राजा नल, युधिष्ठिर वैदेही, ओ जनार्दन जो पुण्यश्लोक अर्थात् स्तुति करने के योग्य हैं, प्रातःकाल इनका नाम अवश्य लेना चाहिये । फिर अश्वत्थामा, वलि, व्यास, हनूमान, विभीषण, कृपाचार्य्य, परशुराम, ये सातों पुरुष चिरजीवी हैं इन सातों को और आठवें मार्कण्डेय को जो प्राणी नित्य स्मरण करता है वह सौ वर्ष तक जीवता है और उसके सर्वप्रकार के रोग नाश हो जाते हैं । फिर अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती, मन्दोदरी इन पांचों को जो पुरुष प्रातःकाल स्मरण करे सर्वप्रकार के पातकों से छूटजावे ।

उक्तप्रकार घर से बाहर निकलकर दशों दिशाओं की ओर मस्तक झुकाते हुए आकाश से लेकर

पृथ्वी तक तारागण ओ वृक्ष इत्यादिकों को देखतेहुए और नीचे लिखे मन्त्रको पढ़तेहुए विराट अर्थात् विश्व मूर्त्ति जगदीश्वर को नमस्कार करे।

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

टी०—सहस्र अर्थात् अनन्त मस्तक, अनन्त नेत्र ओ अनन्त पांव हैं जिस पुरुष के अर्थात अनेक ब्रह्माण्डों में जो अनन्तकोटि जीवों के मस्तक नेत्र पांव इत्यादि हैं, वे सब मानो उसी पुरुष के हैं और इसी कारण जो विश्वमूर्ति कहाजाता है वह सर्वओर से पृथ्वी को घेरे हुए दश अंगुल पर ठहरता है अर्थात् नाभी से दश अंगुल ऊपर जो हृदयकमल उस में निवास करता है, अथवा दशों अंगुलियों की ओर अर्थात् दशों दिशाओं से ठहरता है, तात्पर्य्य यह कि यदि कोई प्रश्न करे कि, वह परमात्मा कहां २ है तो दश अंगुली दशों ओर दिखलाकर बताना चाहिये, अथवा जो कोई प्राणी हाथों को जोड़कर दशांगुल होताहै तब वह परमात्मा उसके दशों जुटीहुई अंगुलियोंके सामने खड़ाहोजाताहै।

तत्पश्चात् प्रातःकाल नीचे लिखे दर्शनीय पदार्थों का दर्शन करे और जिनका दर्शन अयोग्य है उनका दर्शन न करे, यदि दर्शन होजावे तो नीचे गर्दन कर आंख बन्दकरलेवे और 'त्राहिमाम्' कहकर जगदीश्वर को नमस्कार करे।

प्रातःकाले दर्शनीयपदार्थाः ।

आचारप्रदीपे—भारद्वाचमयूराणां चाषस्य नकुलस्यच । प्रभाते दर्शनं श्रेष्ठं वामपृष्ठे विशेषतः ॥ १ ॥ **नागदेवः**—श्रोत्रियं सुभगां गांच अग्निमग्निचितिं तथा । प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स प्रमुच्यते ॥२॥

प्रातःकाले दर्शनायोग्याः पदार्थाः ।

नागदेवः—पापिष्ठं दुर्भगं चान्धं नग्नमुत्कृत्त नासिकम् । प्रातरुत्थाय यः पश्येत्तत्कलेरुप लक्षणम् ॥ १ ॥ भल्लातकं कर्षफलं काकमार्जार मूषकान् । क्लीवंच गर्दभं चैव न पश्येत्प्रातरे-वहिः ॥२॥

टी०—भारद्वाज (लावा) मोर, चाष, (नखविलासी) नेवलाका दर्शन विशेषकर वामभाग में अति उत्तमहै ।१। 'नागदेव' श्रोत्रिय ब्राह्मण, सुन्दर स्त्री, गाय, अग्नि और अग्निहोत्र का दर्शन यदि प्रातःकाल होवे तो सर्व प्रकार की आपत्तियां दूर हों ॥ २ ॥

प्रातःकाल नहीं दर्शन के योग्य—'नागदेव' पापी, अभागा, अन्धा, नंगा, नकटा, इतनों का दर्शन होना मानो कलियुग का उपलक्षण है ॥ १ ॥ भल्लातक (भिलावा) कसैला फल, काग, बिल्ला, चूहा, हिजड़ा, गदहा का दर्शन एकदम निषेध है ॥ २ ॥

तत्पश्चात् बहिर्भूमि को जावे ।

विण्मूत्रोत्सर्गविधिः

'पारस्करगृह्यसूत्रे'--तिष्ठन्न मूत्र पुरीषे कुर्यात्स्वयं प्रशीर्णेन काष्ठेन गुदं प्रमृजीत विकृतं वासो नाच्छादयीत । मूत्रपरीषे ष्ठीवनं चातपे न कुर्यात् ॥

टी०—मलमूत्रपरित्याग की विधि यह है कि खड़े खड़े भूलकर भी कभी मलमूत्र न परित्यागकरे क्योंकि ऐसे करने से मलमूत्र का छींटा अवश्यही पैरों पर पड़ेगा* । फिर यदि मट्टी न मिले सूखे घासफूस औ तृणादि से गुदा को स्वच्छ करलेवे तब जल से शौच करे, विकृतवस्त्रसे अङ्गों को आच्छादन न करे, आतप अर्थात् धूप में मलमूत्र और थूक न करे। शौचविधि नीचे वर्णन कियाजाता है ॥

शौचे उपवीतधारणप्रकारः ।

आह्निककारिकासु—मूत्रे तु दक्षिणे कर्णे पुरीषे वामकर्णके । उपवीतं सदा धार्यं मैथुने तूपवीतिवत् ॥ 'अङ्गिरा'—कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कण्ठलम्बितम् । विण्मूत्रेतु गृही कुर्याद्वामकर्णे समाहितः ॥ 'सायणीये'—मलमूत्रे त्यजेद्विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृत् । उपवीतं तदुत्सृज्य धार्यमन्यन्नवं तदा ॥

---

* पतलून, पायजामा वालोंके लिये बड़ी आपत्ति है; उचित है कि मलमूत्र के समय पतलून खोलकर जावें नहीं तो पतलून इन्द्रुलिस का पात्र बनजावेगा ।

टीका—आह्निककारिका में लिखा है कि यज्ञोपवित को मूत्रके समय दक्षिण कान में औ मल परित्याग के समय वाम कर्ण में धारण करना चाहिये और मैथुनके समय उपवीतिवत् अर्थात् गले औ कक्ष में डाललेना चाहिये। गृहस्थों के लिये 'अङ्गिरा' का वचन है कि मलमूत्र के समय उपवीत को वामकर्ण में डालेहुए केवल कण्ठ से पीठकी ओर लम्बा करलेना चाहिये। 'सायणीये' यदि विप्र मलमूत्र परित्यागकाल में उपवीत को कर्णों में धारणकरना भूलजावे तो उसको उतार कर फिर नवीन धारणकरे।

शौचे जलपात्रग्रहणविचारः।

सायणीये—गृहीत्वा जलपात्रं तु विण्मूत्रे कुरुते यदि। तज्जलं मूत्रसदृश मलश्चान्द्रायणं चरेत्॥

टीका—जलपात्र को हाथमें लियेहुए यदि मल मूत्र परित्याग करे तो वह जल मूत्र के समान होजाता है ऐसा करनेवाला 'चान्द्रायण' व्रत करनेसे शुद्ध होताहै।

॥ शौचे दिग्विचारः॥

यमः—प्रत्यङ्मुखस्तु पूर्वाह्णे अपराह्णे प्राङ्मु-

खस्तथा । उदङ्मुखस्तु मध्याह्ने निशायां द-
क्षिणामुखः ॥ मनुः—छायायामन्धकारेच रात्रा-
वहनि वा द्विजः । यथासुखं मुखं कुर्य्यात्प्राण-
बाधाभयेषुच ॥ (रात्रौ गृहेऽपि यथासुखं मुखं
कुर्य्यात्) ।

टीका—पूर्वाह्न अर्थात् प्रातःकाल से दोपहर दिन
तक पश्चिममुख, औ दोपहर दिनसे सायंकालतक पूरब
मुख फिर मध्याह्न में उत्तरमुख, औ रातको दक्षिणमुख
शौच करे फिर 'मनु' का वचन है कि छाया में अन्ध-
कारमें औ प्राणबाधा के भय में, रात्रि हो वा दिन जिस
ओर सुखपूर्वक हो शौच करे (रात्रि में औ घर में जिस
ओर सुलभ हो उसी ओर करे) ।

शौचे मृत्तिकाप्रमाणम् ।

भृगुः—द्वे लिङ्गे मृत्तिके देये गुदे पञ्च करे
दश । उभयोः सप्त दातव्या विट्शौचे मृत्तिकाः
स्मृताः ॥ १ ॥ चन्द्रिकायाम्—पादतले तिस्रः
मृत्तिका गुल्फयोश्चतस्र इति ॥ २ ॥ भृगुः—
यद्दिवा विहितं शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम् ।

तदर्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि ॥ ३ ॥ एकं शौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः । वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनांच चतुर्गुणम् ॥ ४ ॥ 'आदित्यपुराणे'—स्त्रीशूद्रयोरर्धमानं शौचं प्रोक्तं मनिषिभिः । दिवा शौचस्य निश्यर्धं पथि-पादो विधीयते ॥ आर्त्तः कुर्याद्यथाशक्तिः शक्तः कुर्याद्यथोदितम् ॥ ५ ॥

टीका—भृगु कहतेहैं कि मलमूत्र परित्याग के पश्चात् दोवार मिट्टी लिङ्गस्थान में, पांचवार गुदास्थान में, दशवार बायें हाथमें और सात २ वार दोनों हाथों में लगावे ॥ १ ॥ फिर 'चन्द्रिका' में आज्ञा है कि तीन २ वार पैर के तलवों में औ चार २ वार गुल्फ, अर्थात् एड़ियों में लगावे ॥ २ ॥ फिर 'भृगु' का वचन है कि दिनमें जितना शौच का प्रमाण है उससे आधा रात्रि में, तिससे आधा आतुरता में, तिससे भी आधा मार्ग चलनेमें करे ॥ ३ ॥ एकगुण शौच गृहस्थ के लिये तिससे दूना ब्रह्मचारी, तीनगुना वानप्रस्थ औ चौगुना यतियों अर्थात् सन्यासियों के किये हैं ॥ ४ ॥ 'आदित्यपुराण' में लिखा है कि स्त्री औ शूद्र को आधाही शौच करने को बुद्धिमानों ने कहा है, दिनसे रात्रि

में आधा औ मार्ग में चौथाईही करना चाहिये, दुखियां, रोगी केवल अपनी-शक्तीभर करे औ शक्तिमान प्राणी कथन किये प्रमाणसे करें ॥ ५ ॥

यहां तक बहिर्भूमि इत्यादि का वर्णन होचुका अब दन्तधावनविधि वर्णन कीजाती है ।

दन्तधावनविधिः

पारस्करगृह्यसूत्रे मन्त्रः—(औदुम्बरेण दन्तान्धावयेदन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजा समागमत् । स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन चेति) ।

हरिहरभाष्ये—औदुम्बरेण द्वादशांगुलसंमितेन कनिष्ठिकाग्रवत् स्थूलेनोदुम्बरकाष्ठेन दन्तान्धावयेत् ॥

टीका—उदुंबर की लकड़ी जो बारह अंगुल लम्बी हो और कनिष्ठिका अंगुली के अग्रभाग के समान मोटी हो उसे लेकर दातवन करे औ (अन्नाद्यायव्यूहध्वं) मन्त्र को पढ़लेवे जिसका अर्थ यह है

कि हे दांतो तुम सब अन्नभोजन के लिये एकसाथ एक पंक्ति में दृढ़ होजावो क्योंकि सोमराजा जो सर्व प्रकार के काष्ठों औ औषधियों में निवास करतेहैं वह तुम्हारे सामने इस उदुम्बर के काष्ठ में आकर प्राप्तहैं। जैसे राजा की अवाई सुनकर उनकी सेना संभलकर एक पंक्ति में होजातीहैं उसी प्रकार तुम भी सोमराजा को देखकर एक पंक्ति होजाओ यह सोमराजा मेरे मुख को यश से औ ऐश्वर्य से स्वच्छ औ परिपूर्णकरें।

दन्तधावने वनस्पतिप्रार्थना।

विश्वामित्रकल्पे—आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशून् वसूनि च। ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥

टीका—दातवन वृक्ष से लेने के समय अथवा यदि वृक्ष से लायाहुआहो तो हाथमें लेने के समय यह मन्त्र पढ़नाचाहिये। अर्थ—हे वनस्पतिरूपी ब्रह्म 'अर्थात् जो परमात्मसत्ता वनस्पतियों में विराजमान है', मेरेलिये आयु की वृद्धि, यश, तेज, प्रजा, पशु पृथिवी, ब्रह्मविद्या और भलीप्रकार की बुद्धि प्रदान कीजिये।

दन्तधावने उक्तकाष्ठानि ।

नागदेवः—करञ्जोदुम्बरौ चूतः कदम्बो लोध्रचम्पकौ । वदरीति द्रुमाश्चैते प्रोक्तादन्त प्रधावने ॥ **'वाचस्पतिः'**—आम्राम्रातक धात्र्यो जम्बूखदिरोद्भवम् । शम्यपामार्गखर्जूरी शेलुश्रीपर्णिपीलुजम् ॥ . राजादनंच नारङ्गं कषायं कटुकण्टकम् । क्षीरवृक्षोद्भवं वापि प्रशस्तं दन्तधावने ॥ **'धन्वन्तरिः'**—कषायं मधुरं तिक्तं कटुकं प्रातरुत्थितः । निम्बश्च तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा ॥ दन्तशोधन चूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन् । जिह्वा निर्लेखनं रौप्यं सौवर्णं वार्क्ष मेवच ॥

टीका—दातवन किन वृक्षों की होनीचाहिये उसे वर्णनकरतेहैं—करञ्ज (कटकरेजा) उदुम्बर (गुलर), चूत (आम), कदम्ब, लोध्र (लोध) चम्पा, वैर, इतने वृक्ष दातवन के लिये नागदेव ने आज्ञादीहै फिर 'वाचस्पति' की आज्ञा है कि आम अमरा, आंवला, जामुन, खैर, शमि (एक वृक्ष जिस से आग निकलती है) आपामार्ग (चिरचिरो), खजूर, शेलु (सिंदुआर),

श्रीपर्णि (शहतूत जिससे रेशम उत्पन्न होता है) पीलु [खुरमा] राजादन [पियाल] नारंगी और जो कसैला हो, कटु हो, और जिस में कांटा हो, अथवा जिस में दूध होताहो वे सब वृक्ष दातवन के लिये प्रशस्त हैं. फिर 'धन्वन्तरि' का वचन है कि कसैला, मीठा, तीता औ कटु, इतने प्रकार का दातवन चाहिये जिस में तीते में सब से उत्तम निम्ब* है और कसैले में खैर है। यदि दातवन न मिले तो निमक और तेल मिलाकर अर्थात् दन्तशोधन चूर्ण से मांसको बचायेहुए दांतों को भली भांति मांजकर रूपे, सोने अथवा वृक्ष की जिभिया से जिह्वा को स्वच्छ करे, कम से कम २४ मिनट अवश्यही दातवन करे।

वर्ज्य दन्तधावनकाष्ठानि ।

गर्गः—कुशं काशं पलाशं च शिशुपं यस्तु भक्षयेत् । तावद्भवति चाण्डालो यावद्गङ्गां

---

* यह निम्ब दातवन के लिये अति उत्तम है सर्व साधारण को सब स्थानों में मिलसकता है, इस दातवन से एकदम मुख की स्वच्छता होतीहै. शरीर आरोग्य रहता है यदि १२ वर्ष लगातार करे तो सर्प का विष शरीर पर नहीं चढ़सकता। 'धन्वन्तरि' ने इसीकारण इसको श्रेष्ठ रक्खा।

न पश्यति ॥ १ ॥ अर्धशुष्कंत्वचा हीनं यत्नेन परिवर्जयेत् । पतितं चातिरिक्तंच कीटविद्धं तथैवच ॥ २ ॥

टीका—जिन वृक्षों की दातवन वर्जित है उसे वर्णन करतेहैं—कुश, काश, (कसौंजा) पलाश निशुप (एक वृक्ष का नाम) को जो प्राणी दातों से चुवाता है वह तबतक चाण्डाल के तुल्य है जबतक गङ्गा का दर्शन न करे ॥ १ ॥ आधीसूखी, त्वचाहीन अर्थात् जिसका छिलका निकलगयाहो, पृथ्वीपर जो गिरगई हो, (अतिरिक्त) अर्थात् जो सीधी न हो, टेढ़ी हो अथवा जिसके भीतर पोलाहो, कीटों करके जो वेधीहुई हो ऐसी दातवन एकदम वर्जितहै ॥ २ ॥

दन्तधावने दिग्विशेषः ।

विष्णुः—प्राङ्मुखस्य धृतिः सौख्यं शरीरारोग्यमेवच । दक्षिणेन तथा कष्टं पश्चिमेन पराजयः ॥ १ ॥ उत्तरेण गवां नाशः स्त्रीणां परिजनस्यच । पूर्वोत्तरेतु दिग्भागे सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २ ॥

टीका—पूर्व ओर दातवनकरने से धीरज, सुख औ निरोगता प्राप्तिहोतीहै, दक्षिणमुख से कष्ट, पश्चिम

से युद्ध अथवा शास्त्रार्थ इत्यादि में पराजय अर्थात् हार होती है ॥१॥ उत्तर और मुखधोने से गाय, स्त्री औ सेवकों का नाश और पूर्वोत्तर अर्थात् ईशानकोन की ओर दातवन करने से सर्व प्रकार के कामनाओं की प्राप्ति होती है ॥२॥

उक्त प्रकार दन्तधावन * करने के पश्चता ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः' ॥ यह मन्त्र पढ़कर जल से शरीर का मार्जनकरे । फिर सूर्य्य, तुलसी और गउ को नमस्कारकरे ।

तत्पश्चत् गृह में अथवा कुण्ड, तालाब, नदी आदि तीर्थों में स्नान निमित्त जावे, जिन पुरुषों को नदी आदि तीर्थों में स्नानकरने का अवकाश हो वह तो अवश्यही, श्री १०८ स्वामी हंसस्वरूपकृत वृहत्स्नान विधि के अनुसार नित्यस्नान करें । किन्तु जिनको अवकाश न मिलने से वा समय के सकोच से 'वृहत्-

---

*बहुतेरे ऋषियों की सम्मति यह है कि प्रतिपदा, दर्श, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, रविवार, व्यतीपात औ संक्रान्त के दिन काष्ठ का दातवन न करे, और किसी दूसरी वस्तु से दातों को शुद्ध करलेवे ।

स्नान' करना असंभव हो वे गृहमें गृहस्नान नीचे लिखी विधि से करलियाकरें ।

गृहस्नानविधिः ।

बौधायनः—गृहस्नाने न तु प्रोक्तं मार्जनं तर्पणादिकम् । नान्तराचमनं प्रोक्तं पश्चादाचम्य शुद्धयति ॥ १ ॥

टीका—गृहस्नान में मार्जन, तर्पण औ आचमन इत्यादि की आवश्यकता नहीं, स्नान के पश्चात् आचमन कर शुद्ध होसकतेहैं ॥ १ ॥

शिला अथवा काष्ठ के आसन पर सूर्य्याभिमुख बैठ प्रथम पांव, फिर हाथ, मुख औ यज्ञोपवीत को धोकर तीन गण्डूष जल लेवे, फिर दाहिने हाथ में दो औ वाम में तीन कुश* ले शिखा को स्पर्शकर अंजली में जल ले ॐ नमो नारायणाय इस मन्त्र से उस जल को अपने चारों ओर चार हाथ लम्बाई चौड़ाई में फेंककर तीर्थ निरूपणकर नीचे लिखे मन्त्र से स्नान का संकल्पकरे ।

---

*एक कुश आसन के नीचे और एक मस्तक पर भी रक्खे ।

संकल्पः—विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य ब्रह्मणः द्वितीये परार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भारतवर्षे (भारतखण्डे) जम्बुद्वीपे रामक्षेत्रे परशुरामाश्रमे दण्डकारण्यदेशे श्रीगोदावर्याः पश्चिमदिग्विभागे श्रीमद्धवणाब्धेरुत्तरे तीरे श्रीशालिवाहनशाके बौद्धावतारे अस्मिन्वर्तमाने अमुकनामसंवत्सरे अमुकायने अमुकर्तौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकवासरे अमुकतिथौ मम आत्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं मम इह जन्मनि कायिकवाचिकमानसिकसांसर्गिकज्ञाताज्ञातस्पर्शास्पर्शासनभोजनशयनगमनादिकृतकर्मदोषनिरासद्वारा त्रिविधतापोपशमनार्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं शीतोदकेन उष्णोदकेन वा प्रातः स्नानमहं करिष्ये ॥ इति ॥

एवम् प्रकार संकल्प कर नीचे लिखे मन्त्र से तीर्थों की प्रार्थना करते हुए जलका संस्कारकर स्नानकरे ।

"तीर्थप्रार्थना"---आपो नारायणोद्भूताः स्नाने वास्यायनं पुनः । तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले

स्मराम्यहम् ॥ १ ॥ त्वं राजा सर्वतीर्थानां त्वमेव जगतः पिता । याचितं देहि मे तीर्थं सर्वं पापैः प्रमुच्यते ॥ २ ॥ नमामि गङ्गे तव पादपङ्कजं सुरासुरैर्वन्दितदिव्यरूपम् । भुक्तिं च मुक्तिं च ददासि नित्यं भावानुसारेण सदा नराणाम ॥ ३ ॥ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा । आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदा मम ॥ ४ ॥ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥ ५ ॥ नन्दिनी नलिनी सीता मालती च मलापहा । विष्णुपादाब्ज-सम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ ६ ॥ भागीरथी भोगवती जाह्नवी त्रिदशेश्वरी । द्वादशैतानि नामानि यत्र यत्र जलाशये ॥ ७ ॥ स्नानोद्यतः पठेद्यत्र तत्रैव निवसाम्यहम् । एतान्मन्त्रान्पठित्वान्ते सर्वाङ्गस्नानमाचरेत् ॥ ८ ॥

एवम् प्रकार तीर्थ प्रार्थना कर नीचे लिखे मन्त्रों से स्नान करे ।

विनियोगः—इमम्मे इत्यस्याः—प्रैयमेध ऋषिः सिन्धुसिन्नधो देवता जगती छन्दः । गृहस्नाने विनियोगः ॥

इमम्मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमं सचतापरुष्ण्या । असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया र्जीकीये शृणुह्यासु षोमया ॥

ऋग्वेद, मण्डल ८ अध्याय ३ सुक्त ६ मन्त्र ५।

विनियोगः---ॐ पञ्चनद्य इत्यस्य—याज्ञवल्क्य ऋषिरनुष्टुप् छन्दः। सरस्वति देवता। गृहस्नाने विनि०।

ॐ पञ्च नद्यः सरस्वती मपियन्ति सस्रोतसः सरस्वती तु पञ्चधा सोदेशे भवत्सरित्।

शु० यजु० अ० ३४ मन्त्र ११।

एवम प्रकार गृहस्नान कर शुद्ध धौतवस्त्र धारण कर कंधे पर एक उपवस्त्र लिये सन्ध्या के आसन पर ॐ आसनायनमः कहताहुआ आबैठे।

इति त्रिकुटीविलासे प्रथमोऽध्यायः।

—:)o(:—

नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

त्रिकुटीविलास ।

VOL. I Chapter II	भाग १ अध्याय २

सन्ध्याकर्मप्रारम्भः ।

ॐ पूर्णपरब्रह्मणे नमः

— ॐकारप्रौढमूलः क्रमपदसहितश्छन्दविस्तीर्ण शाखः । ऋक्पत्रः सामपुष्पो यजुरधिकफलोऽथर्व गन्धं दधानः ॥ यज्ञच्छायासमेतो द्विजमधुपगणैः सेव्यमानः प्रभाते । मध्यं सायं त्रिकालं सुचरित-चरितः पातु वो वेदवृक्षः ॥ १ ॥

सन्ध्या के आसन पर आने से पूर्व शारीरिक शुद्धिनिमित्त, दन्तधावन औ स्नानादि कर्म पूर्ण रीति से पूर्व अध्याय में कथन होचुके, अब इस अध्याय में वैदिकसन्ध्याविधि जिसका अधिकार सर्व संस्कार युक्त द्विजातिमात्र को है विस्तार पूर्वक वर्णन किय जाताहै।

मध्य में अनेक प्रकार के उपद्रवों से यह क्रिया एकदम लोप होगईथी, केवल नाम मात्र जहां तहां रहगईथी औ इसी कारण इस समय जितनी सन्ध्या की पुस्तकें छपचुकी है उन सबों में क्रिया का अनुक्रम ठीक न रहने से परस्पर बहुत विरोध और गोलमाल देखपड़ताहै, अतएव इस स्थान में सन्ध्या की क्रियाओं का शुद्ध अनुक्रम दिआजाताहै और सन्ध्याङ्ग कर्मों को अंकित करके यह स्पष्ट करदिया जाताहै कि किस क्रिया के पश्चात् क्या करना।

ऋग, यजुः सामादि वेदों की अनेक शाखाओं के कारण जो भिन्न२ वेद औ शाखावालों की क्रिया में भेद है वह केवल मंत्रोंही का है अनुक्रम का नहीं, इस कारण निम्न लिखित अनुक्रम को सर्वप्रकार की सन्ध्यावालों के लिये विहित रखकर उनके मंत्रों में

जहां २ अन्तर है इस अध्याय में पूर्णप्रकार प्रकट कर दियाजाताहै. अर्थात् इस अध्याय में सर्वप्रकार के वेद औ शाखावालों की सन्ध्या कथन कीजाती है ।

सन्ध्याह्निक्रमा अनुक्रमः ।

१ आसनम्	२ भूप्रार्थना (आसन शुद्धिः)।
३ भूतशुद्धिः	४ भस्मधारणम्
५ शिखाबन्धनम्	६ रुद्राक्षमालाधारणम्
७ आचमनम्	८ प्राणायामः
९ पवित्रधारणम्	१० द्वि पवित्रकरणम्
११ सन्ध्या संकल्पः	१२ पुनराचमनम्
१३ मार्जनम्	१४ अम्बुप्राशनम्
१५ पुनर्द्विराचमनम्	१६ पुनर्मार्जनम्
१७ जलाभिग्रहणम्	१८ अघमर्षणम्
१९ पापपुरुषनिरसनम्	२० अर्घ्यदानम्
२१ सूर्योपस्थानम्	२२ सूर्य्यप्रदक्षिणा
२३ पुनरासनस्थितिः	२४ पुनराचमनम्
२५ चतुर्विंशतिमुद्रा	२६ पुनश्च प्राणायामः
२७ गायत्रीपडङ्गन्यासः	२८ गायत्र्यावाहनम्

——:o:——

प्रकट हो कि सन्ध्या के उपरोक्त पचासों अङ्ग सर्व प्रकार के वेद औ शाखावालों के लिये विहित हैं, केवल मन्त्रों में कहीं २ भिन्नता है इसलिये इस स्थान में प्रथम यजुर्वेदीयमाध्यन्दिनशाखीयविधि वर्णन

कर उपरोक्त भिन्न अंगों के करने की रीति उनके मन्त्र सहित विधिपूर्वक वर्णन कीजातीहै।

—:*:—

यजुर्वेदीयमाध्यन्दिन शाखीयविधिः।

॥ १ ॥

आसनम्।

गीतायाम्---शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः। नात्युच्छ्रितंनातिनीचंचैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रिय क्रियः। उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥

अध्याय ६, श्लोक ११, १२।

व्यासः---कौशेयं कम्बलं चैव अजिनं पट्टमेव च। दारुजं तालपत्रं वा आसनं परिकल्प-

येत् ॥ १ ॥ (आसनगुणाः)----कृष्णाजिने ज्ञान सिद्धिर्मोक्षःश्री व्याघ्रचर्मणि । वंशाजिने तव्याधिनाशः कम्बले दुखमोचनम् ॥ २ ॥ आसनपरिमाणं कालीपुराणे—चतुर्विंशत्यङ्गलन्तु दीर्घं काष्ठासनं मतम् । षोड्शाङ्गुल विस्तीर्ण मुत्सेधं चतुरङ्गुलम् ॥ ३ ॥ वास्त्रं द्विहस्तान्नो दीर्घं सार्द्धं हस्तान्न विस्तृतम् । त्र्यङ्गुलंतु तथोच्छ्रायं पूजाकर्मणि संश्रयेत् ॥ ४ ॥

टीका----पवित्र देश अर्थात् शुद्ध स्थान में जहां का वायु शीतल मन्द सुगंध बहताहो, चारोंओर किसी प्रकार का दुर्गन्ध न हो. पुष्प, चन्दन औ अगर इत्यादि से सुगन्धित हो, बैठने की जगह न अति उच्च हो और न अति नीच हो, समतल (Level) हो, गृह में हो अथवा वाटिका, नदीतट इत्यादि विविक्तस्थान में हो, तहां कुशासन, तिस पर, मृगचर्म, तिस पर वस्त्र भली भांति बिछा स्थिर आसन लगा अपने चित्त औ इन्द्रियों की चाल को रोक एकाग्र मन करके आत्मा का संसार बन्धन छूटने के लिये योगाभ्यास करे ॥ ११, १२ ॥ व्यासजी जी कहतेहैं कि रेशम, कम्बल, व्याघ्र

वा मृगचर्म, कपड़ा, काष्ठ अथवा तालपत्र का आसन * बनावे ॥ १ ॥ अब आसनों का गुण वर्णन करतेहैं कि काले मृग के चर्म के आसन से ज्ञान की सिद्धि, व्याघ्र के चर्म से मोक्ष औ लक्ष्मी, साधारण हरिण के चर्म से रोगों का नाश, और कम्बल से सर्वप्रकार के दुःखों का नाश होताहै, इनसे अतिरिक्त वस्त्रादिकों के आसनों का फल साधारण है ॥ २ ॥ अब आसनों का परिमाण कहतेहैं कालीपुराण में लिखा है कि यदि काष्ठ का आसन हो तो चौबीस अंगुल लम्बा, सोलह अंगुल चौड़ा और चार अंगुल ऊंचा होना चाहिये ॥ ३ ॥ पूजादि कर्म में वस्त्र का आसन दो हाथ से अधिक लम्बा, डेढ़ हाथ से अधिक चौड़ा औ तीन अंगुल से अधिक ऊँचा नहीं होना चाहिये ॥ ४ ॥

उक्तप्रकार आसन बना नीचे लिखे विधि से आसन लगाबैठे।

सिद्धासनविधिः।

चतुरशीत्यासनानि शिवेन कथितानि च।

---

* लोहा, काँसा, सीसा, छिद्र सहित काष्ठ, तृण, पाषाण और पल्लव के आसन से दरिद्रता, रोगोंकी उत्पत्ति औ यश की हानि होतीहै, इसकारण इन वस्तुओंका आसन न बनावे।

तेभ्यश्चतुष्कमादाय सारभूतं ब्रवीम्यहम् ॥ ३३ ॥
सिद्धं पद्मं तथा सिंहं भद्रं चेति चतुष्टयम् ।
श्रेष्ठं तत्रापि च सुखे तिष्ठेत्सिद्धासने सदा ॥३४॥
चतुरशीतिपीठेषु सिद्धमेव सदाभ्यसेत् ।
द्वासप्ततिसहस्राणां नाडीनां मलशोधनम् ॥३७॥
आत्मध्यायी मिताहारी यावद्द्वादशवत्सरम् ।
सदा सिद्धासनाभ्यासाद्योगी निष्पत्तिमाप्नुयात् ॥४०॥

हठयोगप्रदीपिका प्रथमोपदेशः ।

टीका—चौरासी लक्ष आसन हैं अर्थात् जितने जीवजाति हैं तितनेही आसन हैं, उनके भेद केवल शीवजी जानते हैं, उनमें चौरासी फिर चौरासी में चार मुख्य आसन जिनको चतुष्क कहते हैं, विख्यात हैं जिनका नाम वर्णन करता हूं ॥ ३३ ॥ सिद्धासन १ पद्मासन २ सिंहासन ३ औ भद्रासन ४ इन चारों में भी श्रेष्ठ सिद्धासन है, इस कारण सदा सुख पूर्वक यह आसन लगाकर बैठे ॥ ३४ ॥ यह सिद्धासन जो चौरासी आसनों में श्रेष्ठ है, बहत्तर हज़ार नाड़ियों के मल को शोधन करनेवाला है, इसलिये सदा इसी आसन का अभ्यास करे ॥ ३६ ॥ आत्मा का ध्यान करनेवाला और मिताहारी अर्थात् प्रमाण से पथ्य पदार्थों

का भोजनकरनेवाला यदि द्वादश वर्ष बराबर इस आसन का अभ्यासकरै तो बिना किसी और परिश्रम के इसका योग सिद्ध होजावे ॥४०॥

अब वह सिद्धासन कैसे लगाया जाता है उसे वर्णन करते हैं ।

योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेन्मेंढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम् । स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद् भ्रुवोरन्तरं ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥ ३५ ॥

हठ० प्र० प्रथमोपदेशः ।

टीका—गुदा और उपस्थ के मध्य में जो स्थान है उसे योनिस्थान कहतेहैं । बाम गुल्फ़ (एड़ी) को योनिस्थान में लगावे, फिर दक्षिण गुल्फ़ को मेंढ़ * स्थान में लगाय दोनों पैरों के अंगुलियों को गुरुमहाराज के बतायेहुए मार्ग से जानु और ऊरु के मध्य पकड़ रक्खे, औ हृदय के चार अंगुल ऊपर जो गहड़ाई है उसमें चिबुक अर्थात् ठुड्डी को लगाय दृढ़ कर विषयों

---

* उपस्थ से ऊपर और नाभी से चार अंगुल नीचे मध्य स्थान को मेंढ़ कहतेहैं ।

से इन्द्रियों को रोकेहुए अचलदृष्टि कर नासिका * का अग्रभाग देखताहुआ भृकुटी के मध्य देखे, निश्चय मोक्ष के कपाट को खोलदेताहै ॥ ३५ ॥

जब आचमन, मार्जन औ अघमर्षण इत्यादि क्रिया करनी हो तब सिद्धासन का निचला भाग अर्थात् कटि से नीचे का भागमात्र रहेगा, किन्तु प्राणायाम और गायत्रीजप में तो सम्पूर्ण आसन ठीक लगा कटि, हृदय, पीठ, ग्रीव और मस्तक को सीधा सरल औ अचल रखनाहोगा। श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने भी अर्जुन के प्रति कहाहै कि—

समंकाय शिरो ग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम् ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

गीता अध्याय ६ श्लोक १३ ।

एवम्प्रकार आसन लगा मन्त्रों के साथ सन्ध्यादि क्रियाओं को आरम्भकरे ।

---

* नासाग्र, अवलोकन को ठीक करतेहुए पुतलियों को भ्रूमध्य में पहुंचा उलटाकर ज्योतिदर्शन का गुप्त-साधन त्रिकुटी विलास भाग २ अ० १ पृष्ठ ४६ और ६० में देखो, इसके बिना सिद्धासन सिद्ध नहींहोता ।

विनियोगसिद्धान्तः ।

प्रकट हो कि जितने मन्त्र हैं उनके पढ़ने से पूर्व उनका विनियोग पढ़ पृथिवी पर जल गिरानाचाहिये। अर्थात् ऋषि, देवता औ छन्द का तर्पण करनाचाहिये, इसलिये इसस्थान में विनियोग का तात्पर्य्य देखला दिया जाता है ।

येर्महात्मभिर्मन्त्रार्था ज्ञाता यद्वा मन्त्रजपेन सिद्धिर्लब्धा तएवतेषां मन्त्राणामृषय आसन् । ऋतेगुरोपदेशान्मन्त्रसिद्धिर्नलभ्यते विनियोगेत्त्वृषितर्पणेन तत्सिद्धिः सुलभा तस्मात् विनियोगे गुरु तर्पणायर्षिसंयोगः । पाठे जपे वा यच्छन्दोऽच्चारण मशुद्धजातं तद्दोषपरिहारार्थंव छन्दोदेवस्य तर्पण-मावश्यकम् । पाठे जपे वा मनो स्वेष्टदेवध्याना-दन्यत्र गच्छति तद्दोष शान्तये देवतर्पणमावश्य-कम् । तस्मादेव विनियोगः कर्त्तव्यः । येषु म-न्त्रेष्वाध्यात्मिकोऽर्थः कथ्यते तेषु जपपाठफलस्या भावात्केवलमननप्रधानत्वाच्च विनियोगस्य प्रयो-जनं नास्तीति ॥

टीका—जिन महात्माओं ने मन्त्रार्थ को जाना

अथवा मन्त्र जप से सिद्धि लाभ की वही उस मन्त्र के ऋषि हुए, और प्रकट है कि विना गुरु उपदेश मन्त्र की सिद्धि प्राप्त नहीं होती इसलिये विनियोग में गुरुतर्पण के निमित्त ऋषितर्पण करने से वह सिद्धि सुलभ हो जाती है। पाठ अथवा जप में शब्दो च्चारण की अशुद्धियों के दोष निवारणार्थ छन्ददेवता का तर्पण आवश्यक है। फिर पाठ अथवा जप में मन अपने इष्टदेव के ध्यान को छोड़ यत्र तत्र मारा फिरता है तिस दोष की शान्ति निमित्त देवतर्पण आवश्यक है, इसकारण मन्त्रों के आदि में ऋषि, छन्द औ देवता का तर्पण किया जाता है। जिन मन्त्रों का आध्यात्मिक अर्थ कियाजाताहै उन में पाठ के अभाव औ केवल मनन प्रधानता के कारण विनियोग का प्रयोजन नहीं।

वेद का एकही मन्त्र भिन्न २ कार्य्यों में लगाया जाता है इस कारण जिस समय जिस कार्य्य में लगाया जावे उस समय उसी कार्य्यमें विनियोग करना चाहिये, जैसे गायत्री मन्त्र से जब प्राणायाम किया जावेगा तब 'प्राणायामे विनियोगः' और जब केवल जप किया जावेगा तब 'जपे विनियोगः', पाठ किया जावेगा ऐसाही और को भी जानना।

॥ २ ॥

भूप्रार्थना

(आसनशुद्धिः)।

आसन पर बैठजाने के पश्चात् निम्नलिखित मन्त्र का विनियोग सहित पढ़कर पृथिवी की प्रार्थना करते हुए आसन का अगला किनारा उलटा कुश से अथवा हाथ के अंगुलियों से जल छींट आसन शुद्ध करे।

पृथिवीत्यस्य—मेरुपृष्ठ ऋषिः। कूर्मो देवता। सुतलं छन्दः। आसने विनियोगः॥

पृथिवी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥

एवम् प्रकार आसनशुद्धि कर आगे लिखे मन्त्र से भूतशुद्धि करे।
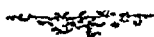
॥ ३ ॥

भूतशुद्धिः ।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिता: ।
ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञयां ॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचा: सर्वतो दिशम् ।
सर्वेषामविरोधेन सन्ध्याकर्म समारभे ॥

इस मन्त्र को पढ़ बायें पैर के पार्ष्णिभाग से अर्थात् एड़ी से तीनवार भूमि को ताड़नकरे तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्र से भैरव को नमस्कार कर सन्ध्या की आज्ञा मांगे ।

तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

एवम् प्रकार भूतशुद्धि कर आगे लिखे मंत्र से भस्म धारणकरें ।

॥ ४ ॥

भस्मधारणम् ।

(तिलकः) ।

बृहन्नारदीये—स्नानं दानं जपो होमः सन्ध्यास्वाध्यायकर्मच । ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनश्चे-त्तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ १ ॥ क्रियासारे—वामहस्ततले भस्म क्षिप्त्वाऽच्छाद्यान्यपाणिना । अग्निरित्यादि मन्त्रेण स्पृशन् भस्माभिमन्त्र्य च ॥२॥ प्रातः स सलिलंभस्म मध्याह्ने गन्धमिश्रितम । सायाह्ने निर्जलं भस्म एवंभस्म विलेपयेत् ॥ ३ ॥ स्मृतिरत्नावल्याम्—ललाटे हृदये नाभौ गलेंऽसे बाहुसन्धिषु । पृष्ठदेशे शिरस्येवं स्था-नेष्वेतेषु धारयेत् ॥ ४ ॥ मध्यमाऽनामिकाङ्गुष्ठै-रनुलोमविलोमतः । अग्निस्त्र्यम्बकावुभयमाहिताग्नि-त्रयम् ॥ ५ ॥ नेत्रयुग्मप्रमाणेन त्रिपुण्ड्रं धारयेद्-द्विजः । षडङ्गुलप्रमाणेन ब्राह्मणानांत्रिपुण्ड्रकम् ॥६॥ नृपाणांचतुरङ्गुलं वैश्यानांद्व्यङ्गुलस्मृतम् । शूद्रा-

ग्रामथ सर्वेषा मेकाङ्गुल्यं त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ७ ॥
काशीखण्डे--भ्रूवोर्मध्यं समारभ्य यावदन्तो भवेद्-
भ्रुवोः । मध्यमाऽनामिकाङ्गुल्योर्मध्येतु प्रतिलोमतः ॥८॥

टीका—बृहन्नारदीय में लिखा है कि स्नान, दान, जप, होम, सन्ध्या और अध्ययन इत्यादि क्रियायें विना ऊर्ध्वपुण्ड्र के निष्फल हो जाती हैं ॥ १ ॥ क्रियासारे—बायें हाथ में भस्म लेकर दाहिने से प्रथम आच्छादन कर ॐ अग्निरिति * इत्यादि मन्त्रों से मर्दन औ अभिमन्त्रण करे ॥२॥ प्रातःकाल जलमिश्रित, मध्याह्नकाल गन्धमिश्रित और सायंकाल विना जल के सूखा भस्म धारण करे ॥३॥ स्मृतिरत्नावलि में लिखा है कि ललाट, हृदय, नाभी, गला, भुजाओं की सन्धियां, पीठ, मस्तक इतने स्थानों में भस्म धारण करे ॥ ४ ॥ मध्यमा, अनामिका और अंगूठा से अनुलोम विलोम अर्थात् दायें बायें फेरफार कर भस्म करें, बहुत छोटे से आयु की हानि और बहुत बड़े से तप का क्षय होता

---

* गायत्री मन्त्र से अथवा केवल ॐकार से भी अभिमंत्रण कर सकते हैं।

है इसकारण समान भस्म वा चन्दन करें ॥ ५ ॥ दोनों नेत्र के प्रमाण से त्रिपुण्ड्र धारणकरना चाहिये । ब्राह्मण ६ अंगुल ॥ ६ ॥ क्षत्रिय ४ अंगुल, वैश्य २ अंगुल और शूद्र वा सब वर्ण केवल एक ही अंगुल विस्तार धारण करें ॥ ७ ॥ काशीखण्डे—दोनों भउहों के मध्य से आरम्भ करके अन्त तक मध्यमा * और अनामिका से फेरफार कर लगानाचाहिये ॥ ८ ॥

भस्ममर्दनमन्त्रः ।

विनियोगः—ॐ अग्निरिति, मन्त्रस्य—पिप्पलाद ऋषिः रुद्रोदेवता, गायत्री छन्दः, भस्माभिमन्त्रणे विनियोगः ।

ॐ अग्निरिति भस्म । वायुरिति भस्म । जलमिति भस्म । स्थलमिति भस्म । व्योमेति भस्म । सर्वँ ह्वा इदं भस्म । मन एतानि चक्षूंषि भस्मानीति ॥

भस्माभिमन्त्रणमन्त्राः ।

विनियोगः—ॐ त्र्यम्बकमित्यस्य— वसिष्ठ

* अंगूठा से रेखा बनाना

ऋषिः, रुद्रो देवता, भाइन्नार्षीत्रिष्टुप् छन्दः, भस्माभिमन्त्रणे वि० ।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् । उर्व्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीयमामुतः ॥

शु० य० अ० १३ मन्त्र ६० ।

विनियोगः—ॐ प्रसद्य इत्यस्य—विरूप ऋषिः, अग्निर्देवता, अनुष्टुप् छन्दः, भस्माभिमन्त्रणे वि० ।

ॐ प्रसद्यभस्मनायोनिमपश्च पृथिवीमग्ने । सꣳसृज्यमातृभिष्ट्वञ्ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥

शु० य० अ० १२ मन्त्र ३८ ।

उक्त प्रकार अभिमन्त्रण कर नीचे लिखे मन्त्र से भस्म धारणकरे ।

भस्मधारणमन्त्रः* ।

विनियोगः—ॐ त्र्यायुषमित्यस्य, नारायण ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, आशीर्देवता, भस्मधारणे विनियोगः ।

ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
यद्देवेषुत्र्यायुषन्तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम् ॥

शु० य० अ० ३ मन्त्र ६२ ।

प्रकट हो कि भस्म अथवा चन्दन ऊर्ध्वपुण्ड् अथवा त्रिपुण्ड्र किसी प्रकार का होवे इन्ही मन्त्रों से धारणकरे, ऊर्ध्वपुण्ड्र मट्टी से, त्रिपुण्ड्र भस्म से, औ दोनों चन्दन से करना चाहिये † । ब्रह्मपुराण में लिखा है कि—

पर्वताग्रे नदीतीरे रामक्षेत्रे विशेषतः ।
सिन्धुतीरे च वल्मीके तुलसीमूल माश्रिता ॥

---

* केवल ॐकार अथवा गायत्री से भी भस्ममर्दन, अभिमन्त्रण औ धारण कर सकते हैं ।

† कोर्ट (कचहरी) जानेवाले ऑफीसर, अमले इत्यादि यदि भस्म वा तिलक लगाने में कुछ लज्जा समझतेहों तो केवल जलहीं का चन्दन करें, शास्त्रों में विहित है ।

जान्हवीतीरसम्भूता द्वारावत्युद्भवा तथा ।
मृद एतास्तु सम्प्राह्या वर्जयेदन्यमृत्तिकाः ॥

अर्थात् पर्वत का अग्रभाग, नदीतीर, रामक्षेत्र, सिन्धु-तट, वल्मीक, तुलसी का मूल, गङ्गातट औ द्वारका इतने स्थानों की मट्टी लेनी चाहिये, इनसे इतर स्थानों की मट्टी वार्जित है । फिर "अग्निहोत्राग्निजं भस्म विरजाहोमजं तथा &c. &c. अर्थात् यदि भस्म लेना हो तो अग्निहोत्र के अग्नि का विरजाहोम, औपासन, काष्ठ, श्रोत्रिय ब्राह्मण के पाकशाला, दावानल औ गोमय (गोबर) का भस्मलेना ।

एवम्प्रकार भस्मधारण के पश्चात् शिखाबन्धन करे ।

——):*:(——

शिखाबन्धनम् ।

चतुर्विंशतिमते—स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने । शिखाग्रन्थि विना कर्म

नकुर्याद्वै कदाचन ॥ १ ॥ मध्येतु वह्वृचाश्चैव निवर्ध्नायुः शिखां ततः । माध्यन्दिनाश्च ये विप्राः पार्श्वे दक्षिणतः क्रमात् ॥ २ ॥ वामपार्श्वे तु वध्नी-युर्ये विप्रा सामगायनाः । मानस्तोकेन मन्त्रेण शिखाबन्धं तु कारयेत् ॥ ३ ॥ नामदेवः—
स्मृत्वोङ्कारञ्च गायत्रीं निवध्नीयाच्छिखां ततः ।
पुनराचम्य हृदयं वाहू स्कन्धौच संस्पृशेत् ॥ ४ ॥

संस्कारभास्करे—खल्वाटत्वादिदोषेण विशिखश्चेन्नरो भवेत् । कौर्शीं तदा धारयीत ब्रह्मग्रन्थि युतां शिखाम् ॥ ५ ॥

टीका—चतुर्विंशति में वर्णन है कि स्नान, दान, जप, हवन, सन्ध्या औ देवपूजन, विना शिखाबन्धन कदापि न करना ॥ १ ॥ ऋग्वेदवाले मध्य में, यजुर्वेद माध्यन्दिन शाखावाले, दक्षिण पार्श्व अर्थात् दाहिनी ओर ॥ २ ॥ और सामवेदवाले वायों ओर 'मानस्तोक' मन्त्र से शिखा वांधें ॥ ३ ॥ अथवा केवल ॐकार वा गायत्री मन्त्र से शिखा वांधें । शिखा वांध आचमन कर हृदय, भुजा और कन्धों को स्पर्श करें ॥ ४ ॥ संस्कार भास्कर में लिखा है कि, खल्वाटादि दोष से जिसको शिखा न हो वह कुश की शिखा वनाकर मस्तक में वांधें ॥ ५ ॥

शिखाबन्धनमन्त्रः ।

विनियोगः--- मानस्तोके इत्यस्य---निचृदा ऋषिः, जगती छन्दः, रुद्रोदेवता, शिखाबन्धने विनियोगः ।

मानस्तोके तनये मा नऽआयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मानो वीरान् रुद्रभामिनो वधीर्हविष्मन्तस्सदमित्त्वा हवामहे ॥

शु० य० अ० १६ मन्त्र १६ ।

एवम् प्रकार शिखाबन्धन के पश्चात् नीचे लिखे विधि से माला धारण करे ।

॥ ६ ॥

मालाधारणम् ।

वाचस्पतावीश्वरः---रुद्राक्षा यस्य गात्रेषु

ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम् । स चाण्डालोऽपि सम्पूज्यः सर्ववर्णोत्तमो भवेत् ॥ १ ॥ अभक्तो वा विभक्तो वा नीचो नीचतरोऽपिवा । रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २ ॥ सहस्रंधारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः । तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा-रुद्रस्तथैव सः ॥ ३ ॥ नागदेवः—अरिष्टपत्रं वीजंच शङ्खपद्मौ मणिस्तथा । कुशग्रन्थिश्च रुद्राक्ष * उत्तमं चोत्तरोत्तरम् ॥ ४ ॥

टीका—वाचस्पतीश्वरः—जिस के अंग में रुद्राक्ष औ ललाट में त्रिपुण्ड्र होवे वह चाण्डाल भी सब वर्णोंमें उत्तम औ पूज्य है ॥ १ ॥ भक्त हो वा अभक्त हो नीच से भी नीच हो परन्तु रुद्राक्ष धारन करतेही सर्व पाप रहित होजाता है ॥ २ ॥ जो नियम पूर्वक एक सहस्र रुद्राक्ष धारन करे वह रुद्र ही के समान सर्व देवतों से पूज्य है ॥ ३ ॥ नागदेवः—रीठे का पत्ता अथवा वीज, शंख, कमल, मणि, कुश का गांठ, रुद्राक्ष इन सब मालाओं में उत्तर से उत्तर श्रेष्ठ है ॥४॥

---

* मूंगा, मुक्ता, स्फटिक, तुलसी औ स्वर्ण की माला भी धारण करसकते हैं।

मालाधारणमन्त्रः ।

विनियोगः—ॐ त्र्यम्बकमित्यस्य (वसिष्ठ ऋषिः, ब्राह्ग्राह्मीत्रिष्टुप छन्दः, रुद्रोदेवता, माला धारने वि०) ।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टि वर्द्धनम्० ।

(देखो पृष्ठ ६२) ।

एवम्प्रकार माला धारण के पश्चात् आगे लिखे विधि से आचमन करें ।

॥ ७ ॥

आचमनम् ।

विदित होवे कि यह आचमन षड्विध अर्थात् ६ प्रकार का है शुद्ध, स्मार्त, पौराणिक, वैदिक, श्रौत औ तान्त्रिक । मलमूत्र कर्म में शुद्ध । भिन्न २ कर्मों में स्मार्त और पौराणिक । ब्रह्मयज्ञादि में वैदिक औ श्रौत । औ अस्त्रविद्यादि कार्यों में तान्त्रिक ॥

सन्ध्याकर्मारम्भ में स्मार्त आचमन प्रशस्त है, इस कारण स्मार्त आचमन की विधि नीचे लिखी जाती है ।

आह्निककारिकासु—प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य चतुर्विंशतिसंख्यया । स्वाहान्तं प्राशयेद्वारि नमोन्तं स्पर्शयेत्तथा ॥ १ ॥ दक्षिणेनोदकं पेयं दत्तं वामेन संस्पृशेत् । तावन्न शुध्यते तोयं यावद्वामो न युज्यते ॥ २ ॥ **नागदेवः**—संहताङ्गुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः । मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठेन शेषेणाचमनं चरेत् ॥ ३ ॥ माषमात्रसुवर्णस्य यत्र मज्जति वै मणिः । एतदाचमनं प्रोक्तं पवित्रं कायशोधनम् ॥ ४ ॥ **भरद्वाजः**—आयतं पर्वणां कृत्वा गोकर्णाऽऽकृतिवत्करम् । एतेनैव विधानेन द्विज-आचमनं चरेत् ॥ ५ ॥ **व्यासः**—अप: पाणिनखे स्पृष्ट्वा आचामेद्यस्तु वै द्विजः । सुरापानेन तत्तुल्य मित्येवमृषिरब्रवीत् ॥ ६ ॥ **पैठीनसिः**—जानुदघ्नजले नद्यास्तिष्ठन्नेवाचमेद्द्विजः । जानोरूर्ध्वं जले तिष्ठन्नाचान्तः शुचितामियात् ॥ ७ ॥

आह्निककारिका—आगे लिखेहुए २४ मन्त्रों से आचमन करे, मन्त्रों के पूर्व में ॐकार उच्चारण कर 'स्वाहा' शब्दोच्चारण तक जल पीवे और 'नमः'

शब्दोच्चारण तक भिन्न २ अङ्गों को (जैसा आगे दिखलावेंगे) स्पर्श करे ॥ १ ॥ दाहिने हाथ में जल लेकर वाम हस्त की तर्जनी वा मध्यमा से दक्षिणहस्त का पृष्ठभाग स्पर्श करता हुआ जल पीवे, क्योंकि बिना वाम हस्त के स्पर्श किये जल शुद्ध नहीं होता ॥ २ ॥ वामदेव—मध्य के अंगुलियों को एकसंग जोर अंगूठे और कनिष्ठिका को खोलेहुए हाथ में जल ले आचमन करे ॥ ३ ॥ उडद के बराबर सोनेका मोती जितने जल में डुबआवे इतना जल लेकर आचमन करे इस से शरीर का मल शुद्ध हो पवित्र होता है ॥ ४ ॥ भरद्वाज का वचन है कि अंगुलियों के गाठों को फैलाकर गऊ के कान के समान हाथ बना आचमन करे ॥ ५ ॥ व्यासजी कहते हैं कि जो द्विज नख स्पर्श कियेहुए जल से आचमन करता है वह सुरा के तुल्य है ॥ ६ ॥ पैठीनसी का वचन है कि यदि नदी आदि में आचमन करना हो तो जानु तक जल में खड़ा होकर आचमन करे, जानु से ऊपर जल में करने से पवित्रता नहीं होती ॥ ७ ॥

ज्ञात होवे कि द्विजों के हाथ में पांच तीर्थ

निवास करते हैं, ब्राह्मम् * १, दैवम् २, पैत्रम् ३, प्राजापात्यम् ४, सौमिकम् ५, इनमें से ब्राह्मतीर्थ के जल से सन्ध्याङ्ग आचमन करे।

ब्राह्मण हृदय तक, क्षत्रिय कण्ठ तक औ वैश्य तालू तक भीग जाने के योग्य जल से आचमन करे, शूद्र केवल होंठ से स्पर्श करा बाहर छोड़देवे।

अब आचमन के मन्त्र औ विधि नीचे लिखे जाते हैं।

आचमनमन्त्राः।

मन्त्र	विधि
१ ॐ केशवायनमः स्वाहा २ ॐ नारायणायनमः ,, ३ ॐ माधवायनमः ,,	इन तीनों मन्त्रों से उक्त कथन किये प्रकार से आचमन करे अर्थात् जल को पीजावे।
४ ॐ गोविन्दायनमः	(इस से दाहिने हाथ का प्रक्षालन करे अर्थात् धोडाले)
५ ॐ विष्णवेनमः ६ ॐ मधुसूदनायनमः	इन दोनों से ऊपर और नीचे के दोनों होठों को प्रक्षालन करे।

---

* हाथ की निचली रेखा के स्थान में ब्राह्म, अगुलियों के नोक में दैव, अंगूठे के मध्यप्रदेशमें पैत्र, कनिष्ठा के आदि में प्राजापात्य, औ मध्य में सौम्य तीर्थ है।

७ ॐ त्रिविक्रमायनमः (ओष्ठ का प्रोक्षण करे अर्थात् जल छींट पवित्र करे)

८ ॐ वामनायनमः (जल को अभिमन्त्रण करे)

९ ॐ श्रीधरायनमः (वायें हाथका प्रक्षालन करे)

१० ॐ हृषीकेशायनमः
११ ॐ पद्मनाभायनमः } दाहिने और वायें पांव का प्रक्षालन करे।

१२ ॐ दामोदरायनमः (मस्तक पर जल छींट पवित्र करे।

१३ ॐ संकर्षणायनमः (नीचेवाले होंठ का प्रोक्षण करे।

१४ ॐ वासुदेवायनमः
१५ ॐ प्रद्युम्नायनमः } दाहिने औ वायें नासापुटों को स्पर्श करे।

१६ ॐ अनिरुद्धायनमः
१७ ॐ पुरुषोत्तमायनमः } दाहिने औ वायें नेत्रों को स्पर्श करे।

१८ ॐ अधोक्षजायनमः
१९ ॐ नरसिंहायनमः } दाहिने औ वायें कानों को स्पर्श करे।

२० ॐ अच्युतायनमः (नाभी स्पर्श करे)।

२१ ॐ जनार्दनायनमः (हृदय स्पर्श करे।

२२ ॐ उपेन्द्रायनमः (मस्तक स्पर्श करे)।

२३ ॐ हरयेनमः
२४ ॐ श्रीकृष्णायनमः } दक्षिण और वाम भुजाओं को स्पर्श करे।

एवम्प्रकार आचमन कर आगे लिखे विधि से प्राणायाम करे ।

॥८॥

प्राणायामः ।

विदित हो कि सन्ध्या में प्राणायामही मुख्य क्रिया है जिसके सिद्ध होजाने से प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की भी सिद्धि होती है, इसीकारण वेद ने बचपनही से अर्थात् जिस दिन से गले में यज्ञोपवीत पड़ा उसी दिन से इसके अभ्यास की आज्ञा दी, किन्तु बड़े शोक की बात है कि इन दिनों यह क्रिया एकदम ऐसी लोपसी देखपड़ती है, कि बहुतेरे बुद्धिमान षट्शास्त्रवेत्ता पण्डित जो शास्त्रों में तो अतिही प्रवीण हैं किन्तु एकदम प्राणायाम क्रिया रहित हैं, यह कह उठते हैं कि सन्ध्या का प्राणायाम कुछ और है और योग का प्राणायाम और है, यह सुनकर एकदम हंसी आती है, उनकी बुद्धि पर शोक होता है,

और नेत्रों से अश्रुपात होने लगता है कि, हाय वे दिन कहां गये कि, इस देश के छोटे २ ब्राह्मणों के बच्चे शृंगी के समान केवल प्राणायामही के बल से परिक्षित् सदृश बड़े २ चक्रवर्त्ती राजाओं को शापद्वारा ध्वंस करदे सकते थे, जिस प्राणायाम के बल से विश्वामित्र के समान और सृष्टि औ संहार में समर्थ हो राजर्षि से ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त करते थे, जिस प्राणायाम के बल से हज़ारों लाखों वर्ष की आयु, रोगों की हानि, सर्व सुख लाभ, और ईश्वर की प्राप्ति होती थी। आज केवल इसी क्रिया के अभाव से किसी क्रियाकी भी सिद्धि नहीं होती, तर्पण, हवन, दान, जप, यज्ञ औ तप सब मिथ्या होरहे हैं। अगस्त्यसंहिता का वचन है कि—

प्राणायामैर्विना यद्यत्कृतं कर्म निरर्थकम्।
अतो यत्नेन कर्तव्यः प्राणायामः शुभार्थिना॥

अर्थात् विना प्राणायाम के और सब कर्म धर्म निरर्थक हैं, इसकारण शुभार्थियों को उचित है कि प्राणायाम यत्नपूर्वक करे। वर्त्तमान काल में जाति अथवा पाण्डित्य के भय से जो कोई प्राणायाम करता भी है तो वह ठीक नाट्यशाला (Theatre) के स्वांग मात्रही होता है, यथार्थ नहीं होता।

केवल पुस्तक पढ़ने से अथवा मन्त्रों का अर्थ साधलेने से यह क्रिया नहीं आती, यह केवल गुरुही द्वारा जानीजातीहै, जबतक साधक नाड़ियों का भेद' चक्रों के स्थान औ श्वास की-चाल, भली भांती गुरु द्वारा न जानलेवे तबतक यह क्रिया सिद्ध नहीं होती इस कारण इस सन्ध्या के साथ 'षट्चक्रनिरूपण' औ 'प्राणायामविधि' भी दो अध्यायों में छाप कर प्रकाश करदियेगयेहैं जिनके देखने से प्राणायाम की गुप्त बातें ज्ञात होतीहैं औ इस क्रिया के करने की श्रद्धा उपजती है। श्रद्धा होतेही गुरु भी प्राप्त होताहै।

प्राणायाम से लाभ।

इस क्रिया से चञ्चलता दूर होतीहै, प्राण औ मन दोनों स्थिर होतेहैं इसलिये सन्ध्या में स्थिरता पूर्वक इष्टदेव के ध्यान में मन लगाने के निमित्त प्राणायाम की आवश्यकता है। श्रीस्वामी स्वात्माराम योगीन्द्र ने लिखा है कि—

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्
योगी स्थाणुत्व माप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥

अर्थात् वायु के चलायमान होनेसे चित्त भी चलाय-

मान होताहै और स्थिर होनेसे चित्त भी स्थिर होताहै इस कारण वृत्ति की स्थिरता निमित्त वायु निरोध अर्थात् प्राणायाम की आवश्यकता है, वायु के निरोध से चित्तका निरोध अवश्यही होगा अतएव गायत्री जप में वृत्ति की स्थिरता निमित्त प्राणायामही की आवश्यकता है। फिर अङ्गिरा का वचन है कि—

दह्यमानोऽनुतापेन कृत्वा पापानि मानवः।
शोचमानस्त्वहोरात्रं प्राणायामैर्विशुद्ध्यति ॥

अर्थात् जो प्राणी दिन रात पापों के ताप से जलता हुआ शोकग्रस्त होरहाहै, वह प्राणायामही से शुद्ध होताहै, गोहत्या, भ्रूणहत्या औ ब्रह्महत्या इत्यादि पापों से भी प्राणायामही द्वारा छूटजाताहै। फिर कात्यायन का वचन है कि—

ओमिति व्याहरन् विप्रो यथाविधि समाहितः।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत्क्षणाज्ज्वलतेऽग्निवत्।
यथा पर्वतधातूनां दोषान् हरति पावकः।
एवमन्तर्गतं पापं प्राणायामेन दह्यते ॥

अर्थात् जो विप्र ॐकार सहित व्याहृति इत्यादि के साथ कम से कम तीन प्राणायाम करता है वह पापों से शुद्ध हो अग्नि के समान भभूका होजाताहै। फिर जैसे

अग्नि के संस्कार से पर्वत के धातुओं का मल नाश होकर शुद्ध निर्मल धातु स्वर्ण, रजत इत्यादि निकल आतेहैं ऐसेही प्राणायाम से अन्तर्गत सर्व पाप भस्म होजातेहैं औ शरीर शुद्ध होजाताहै, फिर मनु का भी वचन इसी अर्थ में है कि—

दह्यन्तेध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

सन्ध्या के समय केवल तीन प्राणायाम करलेने से अनेक प्रकार के लाभ होतेहैं ।

यदि कोई साधक एक अथवा दो माला जप प्राणायामही के साथ करे तो अतिही उत्तम, क्योंकि कुम्भक में गायत्रीजप का सहस्रों गुण अधिक फल होताहै ।

प्राणायाम के अङ्गों का वर्णन ।

शौनकः–प्रणवं व्याहृतीः सप्त गायत्रीं शिरसा सह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥

अर्थात् शौनक कहतेहैं कि प्रणवसहित व्याहृति, गायत्री और शीर्ष के साथ तीन वार प्राण के आयाम करने से प्राणायाम कहलाता है ।

अब जाननाचाहिये कि प्राणायाम में तीन क्रियायें हैं, पूरक, कुम्भक औ रेचक, तीन मन्त्रहैं, सप्तव्याहृतिः, गायत्री औ शीर्ष, औ तीन बंध हैं मूल, जालन्धर औ उड्डियान, इस कारण मन्त्र औ यन्त्रों के सहित प्राणायाम करना।

नाम क्रिया	मन्त्र	बन्ध*
पूरक	सप्तव्याहृतिः	मूल
कुम्भक	गायत्री	जालन्धर
रेचक	शीर्ष	उड्डियान

॥ पूरकः ॥

योगियाज्ञवल्क्यः—नासापुटेनानिलमेव बाह्यमाकृष्य तेनैव शनैः समस्तम्। नाड़ीषु सर्वासु च पूरयेद्यः स पूरको नाव महान्निरोधः॥

नागदेवः—बाह्यवायोरन्तः प्रवेशनं पूरकः।

टीका—योगियावल्क्य का वचन है कि धीरे २ वायु नासापुट की सहायता से खींच कर शरीर के साढ़े

* बंधों का वर्णन देखो त्रिकुटीविलास भाग २ अध्याय १ पृष्ठ ३७ से ४० तक।

तीन लक्ष नाड़ियों को भरदेने का नाम पूरक है। 'नागदेव' ने भी कहाहै, कि बाहर के वायु को भीतर प्रवेश करना पूरक कहाजाताहै, किन्तु प्यारे प्राणायाम करनेवालो उक्त वचनों का अर्थ ऐसा न समझ लीजिये कि नासिका के किसी छिद्र से बाहर के वायु को खींचना पूरक है, जैसा आजकल के प्राणायामवाले केवल पुस्तक देख करलियाकरतेहैं वह 'बाह्यमाकृष्य' (बाहर से वायु लेना) इसका कुछ और तात्पर्य्य है, यहांही गुरू की आवश्यकता है, जो शिष्य के समीप स्वयं वायु को आकर्षन कर दिखलावे, जब आप इस क्रिया को प्रत्यक्ष देखेंगे कि खींचनेवाले ने किस प्रकार खींचकर पूरक करलिया तब ज्ञात होजावेगा कि बाहर से वायु खींचने से पूरक नहीं होता किन्तु भीतर से अर्थात् मूलद्वार से खींचने से स्वयं बाहर का वायु नाड़ियोंमें भरताजाता है। प्राणायाम में जो कुछ कठिनता है और गुप्त रहस्य है वह इसी पूरक में है, पूरक साध्य होजाने से यह क्रिया सहज में सिद्ध होजाती है।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणोऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुध्वा प्राणायामपरायणाः॥

गीता अध्याय ४ श्लोक २६।

अर्थात् कितने प्राणायामवाले अपानवायु में प्राण को और कितने प्राणवायु में अपान को हवन करतेहैं और कितने प्राण, अपान, दोनों को गति रोक कुम्भक करतेहैं, विचार कर देखिये कि शरीर में प्राण औ अपान वायु का निवास कहां २ है 'गुदेऽपानः हृदि प्राणः' गुदा स्थान में अपान औ हृदय में प्राणवायु है, फिर परस्पर दोनों वायु के हवन करने का तात्पर्य्य यही है कि पूरक के समय मूलबंध कर मूलद्वार से वायु हृदय की ओर खींचाजावे, औ रेचक में हृदय की ओर से मूलद्वार को गिरायाजावे, ऐसा करने से आप से आप बाहर का वायु भीतर के साढ़े तीन लक्ष नाड़ियों को भर देगा, इसको सद्गुरु से अवश्यही देखलेना।

॥ कुम्भकः ॥

योगियाज्ञवल्क्यः—नरेचकं नैवतु पूरकं वा नासाग्रभागे स्थितमेव वायुम्। सुनिश्चलं धारयति क्रमेण 'कुम्भाख्य' मेतं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥

नागदेवः—प्रवेशितस्य धारणं कुम्भकः ॥

अर्थात् जब वायु न ऊपर खींचाजावे न नीचे उतारा जावे किन्तु नासाग्र भाग अर्थात् त्रिकुटी में स्थिर दृढ़

निश्चल कर रोक दियाजावे उसे बुद्धिमानों ने कुम्भक कहाहै, फिर नागदेव भी कहतेहैं कि, प्रवेश कियेहुए वायु को धारण करने का नाम 'कुम्भक' है। इसी कुम्भक के समय जालन्धरबन्ध कर गायत्री द्वारा इष्टदेव का ध्यान कियाजाता है, जिसका वर्णन आगे प्राणायाम क्रिया में कियाजावेगा। उचित है कि कुम्भक करनेवाले बल से अधिक कुम्भक न करें, नहीं तो हानि होगी और वायु कोप कर नाड़ियों को विदीर्ण करेगा। हृदय, भ्रूमध्य, औ ब्रह्मरन्ध्र ये तीनों स्थान शरीर में कुम्भक करने के अर्थात् वायु को रोकरखने के हैं।

॥ रेचकः ॥

योगियाज्ञवल्क्यः—निःसार्य नासाविवरादशेषं प्राणं बहिः शून्य इवानिलेन। निरुच्छ्वसंस्तिष्ठति चोर्ध्ववायुः स रेचको नाम महानिरोधः ॥ नागदेवः—धृतस्य वहिर्निःसारणं "रेचकः" ॥ योगी याज्ञवल्क्य कहतेहैं कि नासिका के छिद्र होकर वायु को बाहर निकाल श्वास को ऊर्ध्व रोके हुए अनिल को बाहर शून्य स्थान में धारण कर निःश्वास हो ठहरजाने का नाम "रेचक"

रूपी महानिरोध है। फिर नागदेव भी कहते हैं कि, "कुम्भक" के रोकेहुए वायु को बाहर निकाल देने का नाम, "रेचक" है (सद्गुरु द्वारा जानना) इस क्रिया में सदा ध्यान रखनाहोगा कि, अधिक वेग से वायु नीचे न गिरे धीरे२ जैसे पिपीलिका चलतीहै तैसे वायु भी नीचे उतरे, याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—

येन सक्तून् करस्थांश्च निःश्वासो नैव चालयेत्।
शनैर्नासापुटाद्वायुमुत्सृजेन्नतु वेगतः ॥

अर्थात् हाथ में सत्तू रख कर ऐसे धीरे२ वायु को रेचक करे कि वायु उस सत्तू में लगे; किन्तु वह सत्तू उड़ने न पावे। पूरक को भी इसी प्रकार धीरे२ करना, यदि पूरक कभी वेग से होजावे तो उतनी हानि नही किन्तु रेचक तो कभी भूलकर भी वेग से न हो।

अब इस स्थान में सन्ध्याङ्गप्राणायाम विधि वर्णन कियाजाता है।

प्राणायामविधिः।

कात्यायनपरिशिष्टसूत्रे----वाङ्म
आस्ये नसोः प्राणोऽक्ष्णोश्चक्षुः कर्णयोः

श्रोत्रं बाह्वोर्बलमूर्वोरोजोऽरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह ॥

टीका—प्राणायाम क्रिया के द्वारा मुख में वचन, नासिका में प्राण, नेत्र में दृष्टि सत्ता अर्थात् प्रकाश, कानों में श्रवण शक्ति, भुजाओं में बल, और जांघों में उत्तम पराक्रम, एवम्प्रकार मेरे सब अङ्गों में अभिलषित शक्तियां मेरे सहित उन्नति करें। तात्पर्य्य यह है कि प्राणायाम करनेवाले की शारीरिक औ मानसिक (Physical & mental) सब शक्तियां पुष्ट होजाती हैं, वह प्राणायाम दो प्रकारका है 'अगर्भ' औ 'सगर्भ'।

देवीपुराण—श्रुतिस्मृत्यादिकर्मादौ सगर्भः प्राणसंयमः। अगर्भो ध्यानमात्रंतु स चामन्त्रः प्रकीर्तितः॥

अर्थात् श्रौत, स्मार्त, कर्म में जो मन्त्रों के साथ प्राणायाम कियाजाताहै वह सगर्भ और जो केवल ध्यान मात्र विना मन्त्रों के कियाजाताहै वह अगर्भ है। सन्ध्या में तो सदा सगर्भ ही प्राणायाम कियाजाता है इस कारण इस सन्ध्या में सगर्भ प्राणायाम का वर्णन कियाजाता है।

याज्ञवल्क्यः—सव्याहृतिं सप्रणवां

गायत्रीं शिरसासह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणा-याम: स उच्यते ॥ अर्थात् प्रणवसहित सातों व्या-हृतियां, गायत्री और शीर्ष, इन तीनों के सहित अर्थात् प्राणायाम मन्त्र के साथ जो प्राण को आयाम कर पूरक, कुम्भक और रेचक कियाजाताहै वही सगर्भ प्राणायाम है ।

प्राणायाम मन्त्रः ।

विनियोगः—प्रणवपूर्वकद्वादशाक्षरीमन्त्रस्य परब्रह्म ऋषिः । परमात्मादेवता । दैवीगायत्री छन्दः । सप्तानां व्याहृतीनां विश्वामित्र जमदग्निभरद्वाजगौतमात्रिवसिष्ठकश्यपाऋषयः । अग्निर्वायु सूर्य्यबृहस्पतिवरुणेन्द्र विश्वेदेवा देवताः । गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतिः पङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांसि ॥ तत्सवितु रित्यस्य-विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता गायत्री छन्दः ॥ तथाच आपोज्योति रित्यस्य—प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्माग्निवायु सूर्य्या देवताः । यजुश्छन्दः सर्वेषां प्राणायामे विनियोगः ॥

ॐ भूः । ॐ भुवः । ॐ स्वः । ॐ महः । ॐ जनः । ॐ तपः । ॐ सत्यम् ।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात् ॥ ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥

तै० प्रपा० १० अ० २७ ।

अब देखा जाता है कि उक्त प्राणायाम मन्त्र में तीन खण्ड हैं, १ सप्तव्याहृतिः ('ॐ भूः' से 'ॐ सत्यं' तक), २ गायत्री ('ॐ तत्सवितुः' से 'प्रचोदयात्' तक), ३ शीर्ष ('आपोज्योति' से 'स्वरोम' तक) प्राणायाम के समय इन्हीं तीन मन्त्रों से पूरक, कुम्भक औ रेचक किये जाते हैं। अर्थात् सप्तव्याहृति से पूरक गायत्री से कुम्भक औ शीर्ष से रेचक।

प्राणायाम आठ प्रकार के हैं, (सूर्यभेदन १, उज्जायी २, सीत्कारी ३, शीतली ४, भस्त्रिका ५, भ्रामरी ६, मूर्च्छा ७, प्लाविनी ८,)। इन आठों का वर्णन त्रिकुटीविलास भाग २ अध्याय १ पृष्ठ ४३ से ५६ तक पूर्ण प्रकार से किया हुआ है देखलेना।

इन आठों में से सन्ध्या के समय केवल भ्रामरी जो सबों में सुगम है करनीचाहिये इसकारण इस स्थान में भ्रामरी प्राणायाम बतलाया जाता है।

वेगाद्घोषं पूरकं भृङ्गनादं भृङ्गीनादं रेचकं मन्दमन्दम् । योगीन्द्राणामेवमभ्यासयोगाच्चित्ते जाता काचिदानन्दलीला ॥६८॥

हठयोगप्रदीपिका द्वितीयोपदेशः ।

अर्थात् पूरक के समय वायु को भृङ्ग (भ्रमर *) के नाद से उठानो औ कुम्भक कर भृङ्गी (भ्रमरी) के नाद से रेचक कर देना, ऐसे अभ्यास करने से अभ्यासियों के चित्त में आनन्दलीला की वृद्धि होती है।

आरंभ काल में किसी आचार्य्य ने दक्षिण नाड़ी से और किसी ने वाम नाड़ी से पूरक करना लिखा है कारण यह कि, जो देश शीतप्रधान है वहां दक्षिण नाड़ी से औ जो उष्णप्रधान है वहां वाम नाड़ी से अथवा शीतकाल में दक्षिण नाड़ी से औ उष्णकाल में वाम नाड़ी से करना। किन्तु दक्षिण नाड़ी विष नाड़ी है औ वाम नाड़ी अमृत नाड़ी है इस कारण वाम नाड़ी से आरम्भ करना उत्तम है।

कात्यायनः—दक्षिणे रेचयेद्वायुं वामेना पूरितोदरम्। कुम्भकेन जपं कुर्य्यात् प्राणायामो

---

* भ्रमर औ भ्रमरी का नाद गुरु द्वारा जानलेना।

भवेदिति ॥ १ ॥ स्वात्मारामः—प्राणंचेदिडया पिवेन्नियमितं भूयोऽन्यथारेचयेत् । पीत्वा पिङ्गलया समीरणमथो बध्वा त्यजेद्वामया ॥ सूर्य्याचन्द्रमसोरनेन विधिनाभ्यासं सदा तन्वतां । शुद्धा नाड़िगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः ॥ २ ॥

टीका—कात्यायन की सम्मति है कि, दक्षिण नाड़ी से रेचक औ वाम से पूरक करे और कुम्भक में गायत्री का जप करे इसी को प्राणायाम कहतेहै, फिर योगीन्द्र स्वात्माराम लिखते हैं कि, ईड़ा नाड़ी से नीयमित कर श्वास को पीवे अर्थात् पूरक करे फिर कुम्भक कर पिंगला से रेचन करे, फिर पिंगला से पूरक करे कुम्भक करतेहुए वाम नाड़ी से रेचन करे. फिर एकवार परस्पर ऐसाही करे, ऐसे सूर्य्य औ चन्द्र नाड़ी के साथ परस्पर अभ्यास करने से तीन मास से कुछ ऊंचे में साढ़ेतीन लक्ष नाड़ियां शुद्ध होजातीहैं (गुरु द्वारा जानलेना) ।

अब किन अंगुलियों से कौन छिद्र दबाना उसे वर्णन करतेहैं ।

प्रयोगपारिजाते—पञ्चाङ्गुलीभिर्नासाग्रं पीडयेत् प्रणवेन वै । मुद्रेयं सर्वपापघ्नी वानप्रस्थ

गृहस्थयोः ॥ कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यतेश्च ब्रह्मचारिणः ॥

टीका—गृहस्थ औ वानप्रस्थ पांचों अंगुलियों से नासाग्र को पीड़न कर प्रणव * से कुम्भक इत्यादि करें यह मुद्रा पाप की नाश करने वाली है। यति औ ब्रह्मचारी केवल कनिष्ठा, अनामिका औ अंगूठा तीनही से करें। अब पूरक, कुम्भक औ रेचक के समय किस प्रकार कहां से उठाना, कहां रोकना, किस ओर उतारना, और क्या २ ध्यान करना विधिपूर्वक वर्णन किया जाता है।

प्राणायामक्रियाप्रदर्शनम् ।

सिद्धासन भलीभांती लगाकर सातों व्याहृतियों के स्थान को जिस होकर वायु धीरे २ ऊपर को चढ़ेगा एक सूधीरेखा में करलेवे (सिद्धासन में आप से आप होही जाताहै) एवंप्रकार सीधा बैठ प्रथम दक्षिण नासापुट को रोक, मूलबंध लगा, धीरे २ सातों व्याहृतियों को पढ़ताहुआ आगे बनाएहुए चित्र के अनुसार सातों स्थान के कमल, देवता, देवी और

---

* केवल प्रणव से अथवा अपने इष्टमन्त्र से भी प्राणायाम करसकते हैं।

बीज इत्यादि को ध्यान करता हुआ वायु को मूलद्वार से आकर्षण कर (गुरुद्वारा जानना) ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचा जालन्धरबन्ध लगा कुम्भक करे। कुम्भक के समय गायत्री मन्त्र से अपने २ इष्टदेव का (साकार हो वा निराकार) ध्यान करे, फिर जब न रोकसके धीरे २ शीर्ष मन्त्र पढ़ताहुआ इष्ट के मस्तक से चरण तक ध्यान करताहुआ उड्डियानबंध से वायु को बाहर छोड़देवे अर्थात् रेचक करे।

यदि उक्त प्रकार सातों कमलों का ध्यान करना कठिन जानपड़े तो पूरक के समय केवल नाभी में विष्णु और कुम्भक के समय हृदय में रक्तवर्ण ब्रह्मा और रेचक के समय ललाट में श्वेतवर्ण शिव को ध्यान करे इति।

एवंप्रकार तीन फेर अर्थात् दो चन्द्र और एक सूर्य से दायें बायें पूरक रेचक करने से एक प्राणायाम होता है, सन्ध्या में कम से कम ऐसा तीन प्राणायाम करे।

जितने बार प्रत्येक पूरक, कुम्भक औ रेचक में मन्त्र पढ़ाजावे उतनी ही मात्राका प्राणायाम कहाजाता है। तीन मात्रा का उत्तम होता है, इसलिये सन्ध्या में

तीनही मात्रा का उत्तम प्रणायाम करे ।

उक्त प्रकार प्राणायाम के पश्चात् पवित्रधारण करे ।

॥ ९ ॥

पवित्रधारणम् ।

कुशकण्डिकासूत्रभाष्ये----ब्रह्मयज्ञे गोकर्णमात्रप्रमाणौ द्वौ दर्भौ । तर्पणे हस्तमात्रप्रमाणास्त्रयो दर्भाः ॥

टीका—ब्रह्मयज्ञ में गोकर्णमात्र दो दर्भ औ पितृकर्म तर्पण इत्यादि में हाथ २ भर का तीन दर्भ धारण करनाचाहिये ।

आह्निककारिकासु—यथा वज्रं सुरेन्द्रस्य यथा चक्रं हरेस्तथा । त्रिशूलंच त्रिनेत्रस्य ब्राह्मणस्य पवित्रकम् ॥ १ ॥ प्रयोगपारिजाते— स्नाने होमे जपे दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि

कर्मे सदर्भो कुर्वीत तथा सन्ध्याभिवादने ॥ २ ॥ चतुर्भिर्दर्भपिञ्जूलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम् । एकैकन्यून मुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥ ३ ॥ द्व्यङ्गुलं मूलवलयं ग्रन्थिरेकाङ्गुलिर्भवेत् । चतुरङ्गुलमग्रं स्यात्पवित्रस्य प्रमाणकम् ॥ ४ ॥

कातीयसूत्रभाष्ये—कुशाभावे तु काशाःस्युः काशाः कुशसमाः स्मृताः । काशाभावे ग्रहीतव्या अन्ये दर्भा यथोचिताः ॥ ५ ॥ कुशाः काशाः शरा दूर्वा यवगोधूमवल्वजाः । सुवर्णं * राजतं ताम्रं दश दर्भाः प्रकीर्तिताः ।६। योगियाज्ञवल्क्यः- अनामिकाधृतं हेम तर्जन्यां रूप्यमेवच † । कनिष्ठिकाधृतं खड्गं तेन पूतो भवेन्नरः ॥ ७ ॥ सुमन्तुः- समूलाग्रौ विगर्भौतु कुशौद्वौ दक्षिणे करे । सव्ये चैव तथा त्रीन्वै बिभृयात्सर्वकर्मसु ॥ ८ ॥

टीका—आह्निककारिका में लिखाहै कि जैसे इन्द्र का वज्र, विष्णु का चक्र औ शिव का त्रिशूल तैसेही ब्राह्मण का पवित्र है ॥ १ ॥ प्रयोगपारिजात

---

* १६ माशा से ऊपर का स्वर्ण का पवित्र बनाना चाहिये ।

† जिसका पिता वा ज्येष्ठ भ्राता जीवित हो वह रूपे का धारण न करे ।

में लिखा है कि स्नान, होम, जप, दान, अध्ययन, पितृकर्म और सन्ध्या, हाथ में बिना कुश लिये नहीं करना ॥ २ ॥ चार दर्भ के पिंजूल अर्थात् समूहों का पवित्र ब्राह्मण धारण करे, इसी प्रकार क्रमशः क्षत्रिय से लेकर शूद्र तक एक २ दर्भ कम करता जावे ॥ ३ ॥ दो अंगुल का वलया, एक अंगुल गांठ औ चार अंगुल बाहर निकाल रक्खे, एवम्प्रकार सात अंगुल का पवित्र धारण करे ॥ ४ ॥ कातीयसूत्र में लिखा है कि यदि कुश न मिले तो काश (कसौंजा) का पवित्र बनाना क्योंकि काश कुश के समानही है, यदि काश भी न मिले तो और प्रकार के दर्भ का भी बना सकतेहैं ॥ ५ ॥ कुश, काश, (कसौंजा) शर (शौंक) दूर्व, यव, गेहूं बल्वजा (मूंज) सोना, रूपा औ तांबा, इनही दशों का पवित्र बनाया जासकताहै ॥ ६ ॥ याग्यवल्क्य की सम्मति है कि अनामिका * में सोने का, तर्जनी में रूपे का औ कनिष्ठा में लोहे का भी धारण करसकतेहैं । ७ । सुमन्तु का वचन है कि जड़, अग्रभाग औ मध्य सहित दो कुश दाहिने हाथ में और तीन कुश बायें हाथ में सब देवकर्म के निमित्त धारण करना चाहिये ॥ ८ ॥

---

* अनामिका के जड़ में सदा पवित्र धारण करना चाहिये ।

पवित्रधारणमन्त्रः ।

विनियोगः—ॐ पवित्र इत्यस्य-प्राजापत्य ऋषिः । दैवी बृहती छन्दः । लिंगोक्त देवता । पवित्रधारणे विनियोगः ॥

ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।

शु० य० अ० १ मन्त्र १२ ।

विनियोगः—ॐतस्यते इत्यस्य-प्रजापति ऋषिः पंक्तिश्छन्दः । सविता देवता । पवित्र धारणे विनियोगः ॥

तस्यंते पवित्रपते पवित्रं पूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम् । शु० य० अ० ४ मन्त्र ४ ।

एवम् प्रकार पवित्र धारण के पश्चात् नीचे लिखे विधि से हृदयपवित्र करें ।

॥ १० ॥

हृदयादिपवित्रकरणम् ।

प्रथम हाथ के अंगुलिओं से नीचे लिखे विधि अनुसार इन्द्रियस्पर्श करे तत्पश्चात् हृदय को पवित्र करे।

ॐ वाक् वाक्—नीचे और ऊपर के होठों को स्पर्श करे
ॐ प्राणः प्राणः—नासिका के दानों छिद्रों को ,,
ॐ चक्षुः चक्षुः—दोनों नेत्रों को ,,
ॐ श्रोत्रम् श्रोत्रम्—दोनों कानो को ,,
ॐ नाभिः—नाभी को ,,
ॐ हृदयम्—हृदय को ,,
ॐ कण्ठः—कण्ठ को ,,
ॐ मुखम्—मुख को ,,
ॐ शिरः—शिर को ,,
ॐ शिखा—शिखा को ,,
ॐ बाहुभ्याम् यशोबलम् (दोनों भुजाओं को ,,
ॐ करतल करपृष्ठे (हाथ के हथेलियों को उलटे पुलटे कर स्पर्श करे।

हृदयादिपवित्रकरणमन्त्रः ।

उक्त प्रकार इन्द्रियस्पर्श के पश्चात् हाथ की अंगुलियों से अथवा कुश से जल लेकर नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ता हुआ मस्तक, हृदय औ सर्वांग पर छींट पवित्र करे ।

विनियोगः—ॐ अपवित्रः पवित्रइत्यस्य—वामदेव ऋषिः, विष्णुर्देवता, अनुष्टुपछन्दः, हृदयादिपवित्रकरणे विनि० ।

ॐ अपवित्रः पवित्रोवा सर्वावस्थां गतोऽपिवा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

एवम् प्रकार हृदयादिपवित्र के पश्चात् नीचे लिखे विधि से सन्ध्या का संकल्प करे ।

॥ ११ ॥

सन्ध्यासङ्कल्पः ।

ऋषिमहोये—सङ्कल्पश्चेन्मनसि

मननं प्रोक्तरीत्याथ वाचा व्याहर्तव्यं तदनु च करेणाम्बुसेकस्त्रिधेति ॥

टीका—मन से मननकरना, वचन से बोलना, तत्पश्चात् हाथ में जल लेकर सिक्त करना यही तीन क्रियायें सङ्कल्पकी हैं।

वृहद्यमपद्धार्थः—संकल्पश्च यथा कुर्यात्स्नान दानव्रतादिके। अन्यथा पुण्यकर्माणि निष्फलानि भवन्ति च ॥१॥ **मार्कण्डेयः**—संकल्पमूलः कामोवै यज्ञाः संकल्पसम्भवाः। व्रतंनियम धर्मा च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ॥

टीका—वृहद्यम कहते हैं कि स्नान, दान, व्रत, इत्यादि कर्मों में संकल्प अवश्य कर लेना चाहिये नहीं तो ये सब पुण्य कर्म बिना संकल्प निष्फल होजाते हैं।१। मार्कण्डेय का वचन है कि सब कामनाओं की पूर्ति के निमित्त संकल्प ही की आवश्यकता है, सर्व प्रकार के यज्ञ संकल्प * ही से उत्पन्न होते हैं; व्रत, नियम, धर्म

* सम्पूर्ण जगत की उत्पति, पालन, संहार सब संकल्प ही से होते हैं।

मत्र संकल्प कर के लिख्ह हैं ॥२॥ अतएव सर्व कर्मों में सकल्प कर लेना चाहिये ।

॥ सङ्कल्पमन्त्रः ॥

ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वर * प्रीत्यर्थं प्रातः † सन्ध्योपासनमहंकरिष्ये॥

अथवा ।

ॐ तत्सत्सन्ध्योपासनमहं करिष्ये ॥

उक्त दोनों मन्त्रों में किसी एक को पढ़ता हुआ हाथ में जल ले नीचे पृथ्वी पर छोड़ देवे ।

तत्पश्चात् आगे लिखे विधि से पुनराचमन करे ।

॥ १२ ॥

पुनराचमनम् ।

पृष्ठ ७१ के केवल प्रथम तीन मन्त्रों से आचमन

---

* जिसका जो इष्ट हो उसी का नाम इहां रखे ।

† प्रातः मध्याह्न, अथवा सायं, जौन काल हो वही शब्द इस स्थान में रखे ।

कर बांयें से हस्तप्रक्षालन कर डाले ।

तत्पश्चात् नीचे लिखे विधि से मार्जन करे ।

—:०:—

॥ १३ ॥

मार्जनम् ।

विश्वामित्रकल्पे—भूमौ शिरसि चाकाशे आकाशे भुविमण्डले । मण्डले च तथाकाशे एवंच नवधा क्षिपेत् ॥ १ ॥ सेसथत्रयमाकाशे ऋक्त्रयं मस्तके । नकाराणां त्रयं भूमौ नान्यथा पवित्रं भवेत् ॥ २ ॥ याज्ञवल्क्यः—अधोभागे विसृष्टाभिरसुरा यान्ति संक्षयम् । सर्वतीर्थाभिषेकश्च ऊर्ध्वसम्मार्जनाद्भवेत् ॥ ३ ॥

टीका—विश्वामित्रकल्प में आज्ञा है कि कुश से अथवा हाथ की अंगुलियों से जल लेकर आगे लिखे मार्जन मन्त्र की नवो ऋचाओं को पढ़ता हुआ मस्तक, पृथिवी, औ आकाश, फिर आकाश, पृथिवी, औ मस्तक, फिर मस्तक, आकाश, औ पृथिवी, की ओर छींटे ॥ १ ॥

जिन तीन मन्त्रों के अन्त में से, स, थ, अक्षर हैं उनसे आकाश की ओर, जिनके अन्त में व, व, र, हैं उनसे मस्तक पर औ जिन तीनों के अन्त में नकार हैं उनसे पृथिवी पर जल छींट पवित्र करे, * अन्यथा पवित्रता नहीं होगी ॥२॥ नीचे औ ऊपर जल फेकने का तात्पर्य यह है कि नीचे पृथिवी पर जल क्षेपन करने से असुरों का नाश, औ आकाश की ओर सर्व तीर्थों का अभिषेक होता है ॥३॥

मार्जन करने वालों को ध्यान रखना चाहिये कि मार्जन से पूर्वही नीचे लिखे मन्त्रों से भिन्न २ अङ्गों का अभिषेक करलें फिर मार्जन मन्त्र से मार्जन करे।

ॐ भूः पुनातु शिरसि—मस्तक पर जल छींट पवित्र करे
ॐ भुवः पुनातु नेत्रयोः—दोनों नेत्रों को ,,
ॐ स्वः पुनातु कण्ठे—कण्ठ को ,,
ॐ महः पुनातु हृदये—हृदय को ,,
ॐ जनः पुनातु नाभ्याम्—नाभी को ,,
ॐ तपः पुनातु पादयोः—दोनों पैरों को ,,

---

* किसी २ ऋषि की यह भी सम्मति है कि प्रथम सात मन्त्रों से मस्तक पर, आठवें से भूमि पर, फिर नवें से मस्तक पर जल छींट मार्जन करे।

ॐ सत्यं पुनातु पुनः शिरसि---फिर दोबारा मस्तक को पवित्र करे।

ॐ खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र---सर्वांग को "

एवम्प्रकार अभिषेक कर निम्नलिखित मन्त्र से मार्जन करे।

॥ मार्जनमन्त्राः ॥

याज्ञवल्क्यः---सिन्धुद्वीपं भवेदार्षं गायत्रं छन्द एवहि। आपस्तु दैवतं प्रोक्तं विनियोगश्च मार्जने॥ अर्थात् मार्जन मन्त्र का सिन्धुद्वीप ऋषि है गायत्री छन्द है, और जल देवता है।

विनियोगः---ॐ आपोहिष्ठेति मन्त्रस्य---सिन्धुद्वीप ऋषिः। गायत्री छन्दः। आपो देवता। मार्जने विनियोगः॥

ॐ आपोहिष्ठामयोभुवः---मस्तक पर जल छींट मार्जन करे।

ॐ तानऽऊर्जे दधातन। पृथिवी पर "

ॐ महेरणाय चक्षसे॥ आकाश की ओर "

शु० य० अ० ३६ मन्त्र १४।

ॐ योवः शिवतमोरसः- आकाश की ओर मार्जन करे ।

ॐ तस्य भाजयतेह नः । पृथिवी पर ,,

ॐ उशतीरिव मातरः ॥ मस्तक पर ,,

शु० य० अ० ३६ मन्त्र १५ ।

ॐ तस्मा अरंग मामवः -- मस्तक पर ,,

ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ । आ० की ओर ,,

ॐ आपो जनयथा च नः ॥ पृथिवी पर ,,

शु० य० अ० ३६ मन्त्र १६ ।

एवम् प्रकार मार्जन के पश्चात् आगे लिखे विधि से अम्बुप्राशन करे ।

—o—

॥ १४ ॥

अम्बुप्राशनम् ।

तथा

(प्रातराचमनम्)

जिस प्रकार पृष्ठ ६८ से ७२ तक आचमन में

जल लेने की रीति दिखलाआये हैं उसी प्रकार इस क्रिया में भी निम्नलिखित मन्त्र से हाथ में जल ले अम्बुप्राशन अर्थात् प्रातराचमन करे।

विनियोगः—ॐ सूर्यश्चेत्यस्य—नारायण ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। सूर्योदेवता। अम्बुप्राशने (प्रातराचमने) विनियोगः।

ॐ सूर्यश्च मान्मयुश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षम्। मनसा वाचा हस्ताभ्याम्। पद्भ्यामुदरेण शिश्ना। रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्चित् दुरितंमयि। इदमहमाममृतयोनौ। सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥
(एवम् प्रकार अम्बुप्राशन कर नीचे लिखे विधि से द्विराचमन करे)।

—:※:—

॥१५॥

पुनर्द्विराचमनम्।

इस क्रिया में सब विधि पूर्व कथित आचमन-

विधि के अनुसारही करे और पृष्ठ ७१ के आचमन मन्त्र के प्रथम तीन ही मन्त्र से आचमन कर चौथे से हस्तप्रक्षालन करदे। यदि आचमन के समय जल का अभाव हो तो ब्राह्मण अपने दक्षिण कर्ण को स्पर्श करले, क्योंकि ब्राह्मण के दक्षिण कर्ण में सर्व तीर्थ, औ देवता देवियों का निवासस्थान है।

॥ प्रमाणम् ॥

अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनिलस्तथा ।
सर्वे देवास्तु विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥

॥ १६ ॥

पुनर्मार्जनम् ।

अङ्क १३ पृष्ठ १०० से १०१ तक के विधि अनुसार ही फिर मार्जन करे।

तत्पश्चात् नीचे लिखे विधि से जलावग्रहण करे।

—:*:—

॥ १७ ॥

जलावग्रहणम् ।

नीचे लिखे दोनों मन्त्रों के प्रथम मन्त्र से अंजल में जल ले दूसरे मन्त्र से काम क्रोधादि शत्रुओं के नाशार्थ उस जल को अपनी बायीं ओर पृथिवी पर फेंक देवे ।

विनियोगः—सुमित्रिया दुर्मित्रिया इति द्वयोः—प्रजापति ऋषिः । आपो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । जलावग्रहणे विनियोगः ।

ॐ सुमित्रिया न आपऽओषधयस्सन्तु ।
(इस से जल लेकर) दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयन्द्विष्मः ।
(इस से जल को फेंकदेवे) ।

शु० य० अ० ३८ मन्त्र २३ ।

तत्पश्चात् नीचे लिखे विधि से अघमर्षण करे ।

—:०:—

॥ १८,१९ ॥

अघमर्षणम् ।

तथा

(पापपुरुषनिरसनम्) ।

नागदेवः—जुम्बकायेति मन्त्रेण त्रिदृच्या-द्यघमर्षणम् । जपेद्द्वादशवारं तु महापापापनुत्तये ॥१॥ हारीतः—जुम्बका नाम गायत्री वेदे वाजसने-यके । अन्तर्जले सकृज्जप्त्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥२॥ शौनकः—उद्धृत्य दक्षिणे हस्ते जलं गोकर्णव-त्कृते । निःश्वसन् नासिकाग्रे तु पाप्मानं पुरुषं स्म-रेत् ॥३॥ ऋतञ्चेति त्र्यृचं वापि द्रुपदां वा जपे-द्वसम् । दक्षनासापुटेनैव पाप्मानमपसारयेत् ॥४॥ (तज्जलं नावलोक्याथ वामभागे क्षितौ क्षिपेत्) ॥

टीका—नागदेव कहते हैं कि जुम्बका नाम की गायत्री मन्त्र से भी अघमर्षण करे जिसको १२ बार जपकरने से महा पापों से छूटजाताहै ॥१॥ हारीत

की भी आज्ञा है कि जो प्राणी (विशेष यजुर्वेदीय वाजस-नेयी) इस जुम्बका नाम गायत्री को जल में प्रवेशकर एक वार भी जपता है वह ब्रह्महत्या से छूटजाताहै अ-तएव इस मन्त्र से भी अघमर्षण होसकताहै ॥ २ ॥ अब वह अघमर्षण कैसे कियाजाता है उसे कहतेहैं, कि दाहिने हाथ से गोकर्ण का आकार बना जल ले दाहिने नासापुट के समीप ला निःश्वास हो कुक्षिस्थान में पाप-पुरुषका स्मरण करताहुआ, (ऋतंच सत्यंच) तीनों ऋचाओं से अथवा द्रुपदादिव से उस पापपुरुष * को नाश करतेहुए वायीं ओर उस जल को फेंकदेवे और उसको देखे नहीं ॥ ३. ४. ॥

जुम्बकानाम्नी गायत्री ।

† विधृतिभ्यां धृतꣳरसेनापो पूष्णा

---

* सब अंग काला, रोम २ पापों से भराहुआ, ढाल तल-वार हाथोंमें लिये, स्त्री को कंधे पर रखे और गुरु के शय्या पर पांव दिये, एवम् पाप पुरुष को स्मरण कर हाथ के जल को वायीं ओर क्षेपन करते हुए ऐसा ध्यान करे कि वायीं ओर एक शिला रखी है उस पर देमारा ।

† ब्राह्मणभाग का मन्त्र होने के कारण इस मन्त्र का विनियोग नहीं दियागया ।

मरीचीर्भिरद्भिर्नीहार ऊष्मणां शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभि-
र्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षो ऽं चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि
रूपेण पृथिवीन्त्वचा जुम्बकाय स्वाहा ॥

शु० य० अ० २५ मन्त्र ९

॥ अघमर्षण ॥

तथा

पापपुरुषनिरसनमन्त्राः ।

विनियोगः—द्रुपदादिवेत्यस्य—कोकिलराजपुत्र ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । आपो देवता अघमर्षणे विनियोगः ।

ॐ द्रुपदादिवमुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
पूतम्पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥

शु० य० अ० २० मन्त्र २० ।

इस मन्त्र से वामहस्त में जल लेकर दाहिने से आच्छादन करे।

विनियोगः—ऋतंच सत्यंचेत्यस्य—अघमर्षण ऋषिः। भाववृत्तो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। उदकावघ्राणप्रक्षेपणे विनियोगः॥

ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवंच पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

ऋ॰ सं॰ अ॰ ८ व॰ ४६।

(इस मन्त्र से उस आच्छादन किये हुए जल को दाहिने नासापुट से आघ्राण कर बायीं ओर फेंकदेवे)।

॥ २० ॥

अर्घ्यदानम् ।

व्यासः—कराभ्यां तोयमादाय गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् । आदित्याभिमुखस्तिष्ठंस्त्रिरूर्ध्वं सन्ध्ययोः क्षिपेत् ॥ १ ॥ मुक्तहस्तेन दातव्यं मुद्रां तत्र न कारयेत् । तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेतु राक्षसी मुद्रिका स्मृता ॥ २ ॥ (राक्षसी मुद्रिकार्घ्येचेत्तत्तोयं रुधिरं भवेत्) शौनकः—उपवस्त्रः प्रभातेतु मध्याह्ने ऋजु संस्थितः । द्विजोऽर्घ्यं प्रक्षिपेद्देव्या सायन्तूपविशन्भुवि ॥ ३ ॥ द्वौ पादौतु समौ कृत्वा पूरयेदुदकाञ्जलीन् । गोशृङ्गमात्रमुत्क्षिप्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥ ४ ॥ हस्ताभ्यां स्वस्तिकं कृत्वा प्रातस्तिष्ठ दिवाकरम् । मध्याह्ने तु ऋजू बाहू सायं मुकुलितौ करौ ॥ ५ ॥ काललोपो न कर्तव्यो द्विजेन स्वहितेप्सुना । अर्घोदयास्तसमये तस्माज्जलाञ्जलिं क्षिपेत् ॥ ६ ॥ तेनवज्रोदकेनाशु- मन्देहा नाम राक्षसाः । सूर्यारयः प्रलीयन्ते शैला वज्रहता इव ७ (प्रायश्चित्तार्थमाचम्य मुच्यते दोषइत्यथा) ।

टीका---व्यास जी कहते हैं कि, दोनों हाथों में जल ले गायत्री से अभिमन्त्रण कर सूर्य के सम्मुख खड़े हो दोनों सन्ध्याओं में तीन २ अर्घ्य देवे॥ १॥ खुले हाथ से अर्घ्य देनाचाहिये, मुद्रा नहीं करना चाहिये क्योंकि तर्जनी औ अंगूठे के योग से राक्षसी मुद्रा होजातीहै॥ २॥ (राक्षसी मुद्रा का जल रुधिर के तुल्यहै) फिर शौनक कहतेहैं, कि, प्रातःकाल थोड़ा झुककर, मध्याह्नकाल सीधा खड़ा होकर और सायंकाल पृथिवी पर बैठेहुए द्विज गायत्री मन्त्र से अर्घ्य देवे। ३। दोनों पैरों को बराबर कर गऊ के सींग के समान अंजलि उठा जल को जल में छोड़े॥ ४॥ प्रातः काल दोनों हाथों को स्वस्तिक अर्थात् एक दूसरे के ऊपर रखकर, मध्याह्नकाल भुजाओं को सीधी कर और सायंकाल हाथों को मुकुलित कर अर्थात् आधा खुला औ आधा बंद कियेहुए सूर्य के सम्मुख अर्घ्य देवे। ५। काल का लोप हितैषी द्विजों को नहीं करनाचाहिये, अर्धोदय औ अर्धास्त के समय ठीक अर्घ्यदान करनाचाहिये, इससमय के अर्घ्य का जल वज्र के तुल्य होताहै॥ ६॥ इस वज्रोदक से सूर्य के शत्रु मन्देहा नाम करके राक्षसों का नाश होताहै॥ ७॥ ऐसा

करने से जो राक्षसवध हुआ उसके प्रायश्चित्त निमित्त आचमन करलेना चाहिये ।

जलाभावेऽर्घ्यविचारः—अग्निस्मृतौ—

जलाभावे महामार्गे वन्धनेत्वशुचावपि । उभयोः सन्ध्ययोः काले रजसा चार्घ्यमुच्यते ॥

अग्निस्मृति में लिखा है कि, यदि मार्ग में, वन्धन में औ अशुचिस्थान में जल का अभाव हो तो रज से अर्घ्य देना।

निम्नलिखित गायत्री मन्त्र से अर्घ्यप्रदान करे।

अर्घ्यप्रदानमन्त्रः।

विनियोगः—ॐ भूर्भुवः स्वरिति महाव्याहृतीनां—परमेष्ठीप्रजापतिर्ऋषिः । अग्निवायुसूर्या-देवताः । गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि ॥

ॐ तत्सवितुरित्यस्य—विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । गायत्रीछन्दः । अर्घ्यदाने वि० ।

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्य-

र्भर्गो देवस्य धीमहि । धियोयोनः प्रचोदयात् ॥

शु० य० अ० ३ मन्त्र ३५ ।

ब्रह्मस्वरूपिणे सूर्यनारायणाय नमः । इदमर्घ्यं दत्तं न मम ॥ (असावादित्यो ब्रह्म)

इस से प्रदक्षिणा करता हुआ जल छोड़े ।

एवंप्रकार तीन बार गायत्री मन्त्र से अर्घ्यप्रदान कर उस जल को दाहिने नाक, कान, औ आंख से छुलावे ।

यदि काल व्यतीत हो गयाहो अर्थात् सूर्योदय औ सूर्यास्त हो तो निम्न लिखित मन्त्र से अर्घ्य देवे ।

विनियोग:——आकृष्णेनेत्यस्य——हिरण्यस्तूपऋषिः । त्रिष्टुप्छन्दः । सवितादेवता । अर्घ्यदाने विनियोगः ॥

ॐ आकृष्णेन रजसावर्त्तमानो निवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च । हिरण्ययेनसविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

इस मन्त्र से चौथा अर्घ्य देवे ।

शु० य० अ० ३३ मन्त्र ४२ ।

एवम्प्रकार अर्घ्यदान के पश्चात् सूर्योपस्थान करे

—o—

॥ २१ ॥

सूर्योपस्थानम् ।

याज्ञवल्क्यः—उदुत्यं चित्रं देवाना मुद्वयन्त मसस्परि । तच्चक्षुर्देव इतिच एक चकेति वैधि च ॥ १ ॥ तदसंयुक्तपार्ष्णिर्वा एक पादो द्विपादपि । जपेत् कृताञ्जलिर्वाऽपि ऊर्ध्वबाहुरथापिवा ॥

टीका—याज्ञवल्क्य कहतेहैं कि उदुत्यं, चित्रं, उद्वयं, तच्चक्षुः, इन चारो मन्त्रों से अपने चक्र के विधि अनुसार सूर्योपस्थान करना चाहिये ॥१॥ पार्ष्णि को अलग किये हुए, एक पांव पर अथवा दोनों पांव पर अञ्जलि * बनाकर अथवा बाहु को ऊर्ध्व कर उपस्थान करना चाहिये ।

---

* प्रातः औ सायं अंजलि बनाकर और मध्याह्न ऊर्धबाहुकर उपस्थान करना, प्रातःकाल की अंजलि सीधी औ सायंकाल को उलटी पृथिवी की ओर रखनी चाहिये ।

उपस्थानमन्त्राः ।

विनियोगः—ॐ उद्वयमुदुत्यमिति द्वयोः—प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्योदेवता । अनुष्टुपछन्दः ।

ॐ चित्रं देवानामित्यस्य—कुत्साङ्गिरस—ऋषिः । सूर्योदेवता । त्रिष्टुपछन्दः । ॐ तच्चक्षुरित्यस्य—दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सूर्योदेवता । उष्णिक् छन्दः । सर्वेषां सूर्योपस्थाने वि० ।

ॐ उद्वयन्तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवन्देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

शु० य० अ० २० मन्त्र २१

ॐ उदुत्यंजातवेदसन्देवं वहन्तिकेतवः दृशेविश्वाय सूर्यम् ॥

शु० य० अ० ३३ मन्त्र ३१

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकंचक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्राद्यावा पृथिवी

अन्तरीक्षꣳसूर्य आत्माजगतस्तस्थुषश्च ॥

शु० य० अ० १३ मन्त्र ४६ ।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम-शरदः शतञ्जीवेमशरदः शतꣳ शृणुयामशरदः शत-म्प्रब्रवामशरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्चशरदः शतात् ॥

शु० य० अ० ३६ मन्त्र २४ ।

एवम्प्रकार सूर्योपस्थान के पश्चात सूर्य की प्रदक्षिणा करे ।

———:※:———

॥ २२ ॥

सूर्यप्रदक्षिणा ।

विनियोगः—विश्वतश्चक्षुरिति मन्त्रस्य—विश्वकर्मा भौवन ऋषिः । विश्वककर्मा देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । सूर्यप्रदक्षिणायां विनियोगः ।

ओ३म् विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् । सम्बाहुभ्यान्धमति सम्पतत्रैर्द्यावा-भूमी जनयन्देवएकः ।

शु० य० अ० १७ मन्त्र १९ ।

एवम्प्रकार प्रदक्षिणा के पश्चात् फिर आसन लगा मुद्रा बनावे ।

—o—

॥२३॥

पुनरासनस्थितिः ।

उपस्थान औ प्रदक्षिणा इत्यादि क्रियाओं में आसन से उठजाना पड़ता है इस लिये फिर पृष्ठ ५३ के अनुसार सिद्धासन लगा स्थिर हो आगे की क्रिया आरम्भ करे ।

। २४ ।

पुनराचमनम् ।

आसन लगा पृष्ठ ७१ के आचमनमन्त्र के केवल प्रथम तीन मन्त्रों से आचमन औ चौथे से हस्तप्रक्षालन कर तत्पश्चात् नीचे लिखे विधि से चौबीसों मुद्राओं को करें ।

—०—

॥ २५ ॥

चतुर्विंशतिमुद्रा ।

प्राणायाम के आरम्भ से पहिले मुद्राओं को करलेनी चाहिये क्योंकि ये मुद्रा प्राणायाम की सहाय कारिणी हैं. फिर गायत्री के पूर्वही मुद्रा करने की आज्ञा है और गायत्री प्राणायाम क्रिया में कुम्भक समय पड़ीजाती है इस लिये प्राणायाम के पूर्वही मुद्रा करलेनी चाहिये ।

फिर इन मुद्राओं के करलेने से शरीर के दशों

वायु "प्राण, अपान, उदानादि," जो इधर उधर चञ्चल रहते हैं स्थिर होजाते हैं, जिनके स्थिर होने से प्राणायाम में वायु के चढ़ाने उतारने में किसी प्रकार का कष्ट न होकर श्वास नहीं फूलता और शरीर की विद्युत् जो व्योहार के कारण वायें दायें हो जाती है इन मुद्राओं से समभाग में बंटजाती है इस कारण प्राणायाम के प्रथम ही मुद्रा अवश्य करनी चाहिये ।

चतुर्विंशतिमुद्रास्वरूपवर्णनम् ।

सुमुखं संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा ।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुःपञ्चमुखं तथा ॥
सम्मुखाधोमुखे चैव व्यापकाञ्जलिकं तथा ।
शकटं यमपाशं च ग्रथितं चोन्मुखोन्मुखं ॥
प्रलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यः कूर्मो वराहकम् ।
सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥
एता मुद्रा चतुर्विंशा गायत्रीषु प्रतिष्ठिता ।
एता मुद्रा नजानाति गायत्री तस्य निष्फला ।

अर्थात् सुमुख, संपुट और विततादि चौबीसों मुद्राओं से गायत्री प्रतिष्ठित है जो प्राणी इन मुद्राओं को नहीं जानता उसका गायत्री जपना निष्फल है ।

अब उक्त मुद्राओं के बनाने की रीति कथन की जातीहै।

१ सुमुखम्=दोनो हथेलियों को एक दूसरे के सम्मुख रखकर मुख की आकृति बनानी जैसे बच्चों के दोनों गालों को माता दोनों ओर से दबातीहै।

२ संपुटम्=उक्त मुद्रा का संपुट करदेना।

३ विततम्=उक्त संपुट मुद्रा को तोड़कर दोनों हथेलियों को चितकर जवमात्र विलग २ रखना।

४ विस्तृतम्=उक्त मुद्रा की हथेलियों को अधिक विलग करदेना अर्थात् दोनों में हाथभर का अन्तर रखना।

५ द्विमुखम्=कनिष्ठिकाओं औ अनामिकाओं के अग्र भाग को मिला अञ्जलि बनानी।

६ त्रिमुखम्=उक्त बनीहुई मुद्रा में मध्यमाओं को भी मिलादेना।

७ चतुर्मुखम्=उक्त मुद्रा में तर्जनियों को भी मिलादेना।

८ पञ्चमुखम्=उक्त चतुर्मुख मुद्रा में दोनों अंगुष्ठाओं को भी मिलादेना।

९ सम्मुखम्=वितत मुद्रा को आकाश की ओर खड़ा कर देखाना।

१० अधोमुखम्=उक्त सम्मुख मुद्रा को उलट कर अधोमुख अर्थात् पृथिवी की ओर देखाना।

११ व्यापकाञ्जलिकम्=अंजलि बनाकर चक्र ऐसा चारों ओर फिराना जैसे पूजादि में दीपक देख लाते हैं।

१२ शकटम्=बांयीं हथेली उलट उसपर दाहिन हथेली रखकर दोनों ओर की तर्जनियों और अंगूठों को मिलाकर दोनों ओर गोलाकार गाड़ी के पहिया समान बना मध्य के तीनों अंगुलियों को आगे निकाल गाड़ी का स्वरूप बनाना।

१३ यमपाशम्=बांयीं तर्जनी को दाहिनी तर्जनी से मिलाकर अंकुश के ऐसा खींचना जैसा रेलगाड़ियों के जोड़ में अंकुश ऐसा देखपड़ता है।

१४ ग्रथितम्=दोनों हथेलियों के गांसों को मिलाकर बांधना जिसमें अंगुली भीतर की ओर हथेली में बन्द होजावें।

१५ उन्मुखोन्मुखम्=दोनों हथेलिओं को पांचों अंगुलिओं को जोड़ कर मुख से मुख को मिलाना।

१६ प्रलम्बम्=दोनों हाथों की हथेलियों को उलटा मिलाकर आगे की ओर फैलाना।

१७ मौष्टिकम्=उक्त प्रलम्ब मुद्रा को मूठी बांधनी

१८ मत्स्यः=वाम हथेली के पृष्ठभाग पर दक्षिण हथेली का तल रख-दोनों ओर के अंगूठों को फैलाकर मछली के डैना ऐसा बनाना।

१९ कूर्मः*=बायीं मध्यमा और अनामिका को दाहिनी मध्यमा और अनामिका से पकड़ अंगूठे को अंगूठे से तर्जनी को तर्जनी से और कनिष्ठा को कनिष्ठा से मिला आगे मुख करदेना जिससे कछुआ का आकार बनजावे (गुरु द्वारा जानना)।

२० वराहकम्=बायीं हथेली को उलटाकर उसकी मध्यमा और अनामिका पर दाहिनी मध्यमा और अनामिका को उसी प्रकार रख कुछ नीचे की ओर झुकाकर तर्जनी को कनिष्ठा से और कनिष्ठा तर्जनी से

---

* किसी ऋषि की यह भी सम्मति है कि दोनों हाथों की मध्यमा और अनामिकाओं को परस्पर पकड़रखने के पश्चात् दाहिनी कनिष्ठिका बायीं तर्जनी पर और दाहिनी तर्जनी बायें अंगूठे पर रखकर कछुआ का आकार बनावे।

मिलाकर दांतों के ऐसा बना बराह की आकृति बनाती।

२१ शृंगाक्रान्तम्=मूठी बांध दोनों हाथों की तर्जनियों को सींगों के ऐसा निकाल कर मस्तक की दोनों ओर देखाना।

२२ महाक्रान्तम्=उक्त बनाई हुई शृंगाक्रान्त मुद्रा की सब अंगुलियों को खोल मृग के शृंग के ऐसा फैलादेना।

२३ मुद्गरम्=बायीं हथेली पर दाहिने हाथ की किहुनी रख सीधी आकाश की ओर खड़ी कर मूंठी बांधनी।

२४ पल्लवम्=उक्त मुद्गर मुद्रा की मूंठी आकाश की ओर खोलदेना।

उक्त २४ मुद्राओं को कर पुनः प्राणायाम आरम्भ करे।

—*—

॥ २६ ॥

पुनश्च प्राणायामः।

पृष्ठ ७३ से ८० तक के विधि अनुसार करे।

तत्पश्चात् गायत्री षडङ्गन्यास निम्न लिखित विधि से करे।

—:*:—

॥ २७ ॥

गायत्रीषडङ्गन्यासाः ।

विनियोगः——ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिः । अग्नि-र्देवता । गायत्री छन्दः । प्रथमस्वरोबीजम् । पञ्चमः स्वरःशक्तिः । शिवः कीलकं विद्युद्वर्णम् । न्यासे वि० ।

ॐ अङ्गुष्ठाग्रे तु गोविन्दम् । ॐ तर्जन्यांतु महीधरम् । ॐ मध्यमायां हृषीकेशम् । ॐ अ-नामिकायाम् त्रिविक्रमम् । ॐ कनिष्ठिकायां न्य-सेद्विष्णुम् । ॐ करमध्येतु माधवम् । ॐ करपृष्ठे हरिं विद्यात् । ॐ मणिबन्धे जनार्दनम् ।

इन मन्त्रों को पढता हुआ जिन अंगुलियों और अंगों के साथ जिन देवों का नाम है उन्हीं को उन अंगों और अँगुलियों से नमस्कार करे अर्थात् दोनों हाथों की उनही अंगुलियों को परस्पर जोड़ किंचित् नीचे को ओर झुका देवे (गुरु द्वारा जानलेना) ।

ॐ भूः—अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ भुवः—तर्जनीभ्यां नमः। ॐ स्वः—मध्यमाभ्यां नमः। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्—अनामिकाभ्यां नमः। ॐ भर्गोदेवस्यधीमहि—कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ धियो योनः प्रचोदयात्—करतल करपृष्ठाभ्यांनमः।

जिस मन्त्र में जिस अंगुली का नाम है उसी से गायत्री के भिन्न-२ अंगों को नमस्कार करे।

ॐ भूः—हृदयायनमः। ॐ भुवः—शिरसे स्वाहा। ॐ स्वः—शिखायै वषट्। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्—कवचायहुम्। ॐ भर्गोदेवस्यधीमहि—नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ धियोयोनः प्रचोदयात्—अस्त्रायफट्।

उक्त प्रकार ही इन मन्त्रों से भी उन भिन्न २ अंगों को जिनका नाम उन मन्त्रों के साथ है अंगुलियों से वा कुश से स्पर्श करताहुआ पवित्र औ दृढ़ करे। औ अस्त्रायफट् पढ़ने के समय दक्षिण तर्जनी औ मध्यमा से वाम करतल पर फट् शब्द करता हुआ मारे (गुरु द्वारा जानलेना)।

अथ प्रणवन्यासः ।

ॐ अकारम्----नाभौ । ॐ उकारम्---हृदये । ॐ मकारम्----मूर्ध्नि । जिन अक्षरों के साथ जौन अंग है उसीको स्पर्श करे ।

व्याहृतिन्यासाः ।

ॐ भूः-----पादयोः । भुवः-----जान्वोः । ॐ स्वः---ऊर्वोः ॐ महः---जठरे । ॐ जनः---कण्ठे । ॐ तपः---मुखे । ॐ सत्यम्---शिरसि ।

उक्त प्रकारही इस क्रिया को भी करे ।

गायत्र्यक्षरन्यासाः ।

ॐ तकारम्-----पादाङ्गुष्ठयोः । ॐ सकारम्----गुल्फयोः । ॐ विकारम्---जङ्घयोः । ॐ तुकारम्---जान्वोः ॐ वकारम्---ऊर्वोः । ॐ रेकारम्---गुदे । ॐ णिकारम्---लिङ्गे । ॐ यकारम्---कट्याम् । ॐ भकारम्---नाभौ । ॐ गोकारम्---उदरे । ,, दकारम्---स्तनयोः । ,, वकारम्---हृदये । ,, स्यकारम्---कण्ठे ।

ॐ धिकारम्----मुखे। ॐ मकारम्---तालुदेशे।
,, हिकारम्----नासिकाग्रे। ॐ थिकारम्---नेत्रयोः
,, योकारम्---भ्रुवोर्मध्ये। ॐ द्वितीय योकारम्--
ललाटे। ॐ नकारम्---पूर्वमुखे। ॐ प्रकारम्--
दक्षिणमुखे। ॐ चोकारम्---पश्चिममुखे। ॐ
दकारम्---उत्तरमुखे। ॐ यकारम्---मूर्ध्नि। ॐ
व्यञ्जनतकारम्---व्यापकं सर्वतो न्यस्येत।

उक्त प्रकारही इस क्रिया को भी करे।

॥ शिरोन्यासाः ॥

ॐ आपो---गुह्ये। ॐ ज्योतिः---चक्षुषि।
,, रसो---त्वके। ,, अमृतम्---जानुनि।
,, ब्रह्म---हृदये। ,, भूः---पादयोः।
,, भुवः---नाभौ। ,, स्वः---ललाटे।
,, कारम्---मूर्ध्नि।

उक्त प्रकारही अंगों को स्पर्श करे।

एवम्प्रकार न्यासों के पश्चात् आगे लिखे विधि से गायत्री का आवाहन करे।

॥ २८ ॥

गायत्र्यावाहनम् ।

विनियोगः—ॐ तेजोसीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । आज्यं देवता । जगती छन्दः । यजुर्गायत्र्यावाहने विनियोगः ।

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियन्देवानामनाधृष्टन्देवयजनमसि ॥

शु० य० अ० १ मन्त्र ३१ ।

इस मन्त्र के साथ नीचे लिखा हुआ मन्त्र पढ़ गायत्री का आवाहन करे ।

ॐ गायत्री त्र्यक्षरां बालां साक्षसूत्रकमण्डलुम् । रक्तवस्त्रां चतुर्हस्तां हंस वाहनसंस्थिताम् । ऋग्वेदस्य कृतोत्सङ्गां सर्वदेवनमस्कृताम् । ब्रह्माणीं ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मलोकनिवासिनीम् । आवाहयाम्यहं देवीमायान्तीं सूर्यमण्डलात् । आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि । गायत्रि छन्दसां मातर्ब्रह्मयोने नमोऽस्तुते ॥

उक्त प्रकार गायत्री का आवाहन कर नीचे लिखे मन्त्र से गायत्री का उपस्थान करें।

—*—

॥ २९ ॥

गायत्र्युपस्थानम् ।

ॐ तुरीयपदस्य—विमलऋषिः । परमात्मा देवता । गायत्री छन्दः । गायत्र्युपस्थाने वि० ।

ॐ गायत्र्यस्येकपदी । द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि । नहिपद्यसे नमस्ते तुरीयायदर्शताय पदाय परोरजसे सावदोम् ।

इस मन्त्र से गायत्री का उपस्थान कर पश्चात् नीचे लिखे विधि से गायत्री के रूप को स्मरण करता हुआ ध्यान और प्रार्थना करे।

—*—

३०, ३१, ३२।

गायत्र्याःरूपम्, ध्यानम्, प्रार्थनाच।

१ रूपम्—ॐ तत्सवितुरित्यस्य—विश्वामित्र ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छन्दः। वायव्यं बीजम्। चतुर्थी शक्तिः। पञ्चविंशतिर्व्यञ्जनानि कीलकम्। चतुर्थपदम्। मरुद्बोमुखम् (अग्निर्मुखम्)। ब्रह्माशिरः। विष्णुर्हृदयम्। रुद्रकवचम्। परमात्मा शरीरम्। श्वेतवर्णा सांख्यायनसगोत्राः षड्स्वराः। सरस्वती जिह्वा। पिङ्गाक्षी त्रिपदा गायत्री। अशेषपापक्षयार्थे जपे विनियोगः।

तत्सवितुः (देखो लाल पत्र पृष्ठ ग) इस मन्त्र को कम से कम तीन बार जप कर फिर ध्यान करे

२ ध्यानम्—मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैः। युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वात्म

वर्णात्मिकाम् ॥ गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं । शङ्खं चक्र मथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥

३ प्रार्थना—यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं तु यद्भवेत् । तत्सर्वं क्षम्यतां देवि काश्यपि प्रियवादिनि ॥

—:*:—

॥ ३३ ॥

गायत्रीशापविमोचनम् ।

ब्रह्मशाप, वशिष्ठशाप औ विश्वामित्रशाप ये तीन शाप गायत्री के हैं, इन से उद्धारकर फिर गायत्री जपे क्योंकि—शापयुक्ता तु गायत्री सफला न कदाचन । शापादुत्तारिता सातु भुक्ति मुक्तिफलप्रदा ॥

अर्थात् शापयुक्त गायत्री का जप निष्फल है औ शाप उद्धारकर जपने से भुक्ति औ मुक्ति की देनेवाली होतीहै ।

ब्रह्मशापविमोचनमन्त्रः ।

विनियोगः—ओमस्य श्रीब्रह्मशापविमोचनमन्त्रस्य—ब्रह्मा ऋषिः । भुक्तिमुक्तिप्रदा ब्रह्मशापविमोचनी गायत्री शक्तिर्देवता । गायत्री छन्दः । ब्रह्मशापविमोचनार्थे जपे वि० ।

गायत्रीं ब्रह्मोपासीत यद्रूपं ब्रह्मविदोविदुः ।
तां पश्यन्ति धीराः सुमनसा वाचामग्रतः ॥

ॐ वेदान्तनाथाय विद्महे । हिरण्यगर्भाय धीमहि । तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ॥

ॐ देवि गायत्रि त्वं ब्रह्मशापाद्विमुक्ता भव ॥

श्रीवशिष्ठशापविमोचनमन्त्रः ।

विनियोगः—ओमस्य श्रीवशिष्ठशापविमोचनमन्त्रस्य—निग्रहानुग्रहकर्त्ता वशिष्ठऋषिः । वशिष्ठानुगृहीता गायत्रीशक्तिर्देवता । विश्वोद्भवा गायत्री छन्दः । वशिष्ठशापविमोचनार्थे जपे वि० ।

ॐ सोऽहमर्कमयं ज्योतिरात्मज्योतिरहं शिवः

आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योती रसोऽस्म्यहम् ॥

इस मन्त्र को पढ़ योनिमुद्रा * दिखाकर तीन बार गायत्री मन्त्र पढ़े ।

ॐ तत्सवितुः (देखो लाल पत्र पृष्ठ 'ख') ।

ॐ देव गायत्रि त्वं वशिष्ठशापाद्विमुक्ता भव ।

विश्वामित्रशापविमोचनमन्त्रः ।

विनियोगः------ओमस्य श्रीविश्वामित्रशापविमोचनमन्त्रस्य-----नूतनसृष्टिकर्त्ता विश्वामित्र ऋषिः । विश्वामित्रानुगृहीता गायत्रीशक्तिर्देवता । वाग्देहा गायत्री छन्दः । विश्वामित्रशापविमोचनार्थे जपे वि० ।

गायत्रीं भजाम्यग्निमुखीं विश्वगर्भां यदुद्भवाः । देवाश्चक्रिरे विश्वसृष्टिं तां कल्याणीमिष्टकरीं प्रपद्ये ॥ 'यन्मुखान्निःसृतोऽखिलवेदगर्भः' ॥

---

*देखो पृष्ठ १४२ ।

ॐ देवि गायत्रि त्वं विश्वामित्रशापाद्विमुक्ता भव ।

एवम्प्रकार शापविमोचन के पश्चात् गायत्र्य-स्त्रोपाहरण करे ।

—*—

॥ ३४ ॥

गायत्र्यस्त्रोपाहरणम् ।

विनियोगः—ओमस्य गायत्र्यस्त्रोपाहरणमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः । ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि । क्रियामयं वपुः । परात्परशक्तिर्देवता । हँबीजम् । सँ शक्तिः । सोऽहँकीलकम् । अस्त्रोपाहरणे । विनियोगः ।

ॐ ब्रह्मतेजो ज्वालामालिनीं देवीं ह्राँ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

ॐ विष्णुतेजो ज्वालामालिनीं देवीं ह्रीँ तर्जनीभ्यां नमः ।

ॐ रुद्रतेजो ज्वालामालिनीं देवीं हूँ मध्यमाभ्यां नमः ।

ओमग्नितेजो ज्वालामालिनीं देवीं हैं अनामिकाभ्यां नमः ।

ॐ ज्ञानतेजो ज्वालामालिनीं देवीं ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

ॐ सत्यं तेजो ज्वालामालिनीं देवीं ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

उक्त अङ्गुष्ठादि प्रत्येक अङ्गों से ह्रां इत्यादि प्रत्येक मन्त्रों को पढ़ता हुआ न्यासकी रीतिसे नमस्कार कर पवित्रता प्राप्त करे ॥ तत्पश्चात् (बहुरूपिणि गायत्रि दिव्यसन्ध्ये सरस्वति । अजरे अमरे देवि ब्रह्मयोनिर्नमोऽस्तुते) इस श्लोक को पढ़ गायत्री को नमस्कार करे ॥ तत्पश्चात् चौबीसों मुद्राओं को कर दिखलावे ।

—०—

॥ ३५ ॥

पुनश्चतुर्विंशतिमुद्रा प्रदर्शनम् ।

जिस प्रकार पृष्ठ ११७ से १२२ तक कह आये हैं उसी प्रकार फिर चौबीसों मुद्राओं को कर गायत्री का जप करे ।

—०—

॥ ३६ ॥

गायत्रीजपः ।

नागदेवः—गायन्तं त्रायते यस्माद्गा-यत्री तेन सोच्यते ॥ अर्थात् गानेवाले की जो रक्षा करे अथवा जिसके गानकरने ही से रक्षाहो उसे गायत्री कहते हैं ।

शङ्खः—कुशमयासनासीनः कुशोत्तरीयवान् कुशपवित्रपाणिः प्राङ्मुखः सूर्याभिमुखो वाक्षमा-लामादाय देवताध्यायी जपं कुर्यात् । तत्र ॐ भूर्भुवः स्वरित्यनेन त्रिवारं हृदयशिरः शिखा स्थानानि मार्जयेत् ॥

टीका—शङ्ख का वचन है कि कुशासन पर बैठ, कुश की उत्तरीय गले में डाल औ कुश को पवित्र हाथ में धारण कर पूर्वमुख अथवा सूर्य के मुख अक्षमाला धारणकिये इष्टदेव का ध्यान करता हुआ जप करे । और ॐ भूर्भुवः स्वः इस मन्त्र से तीन बार हृदय, मस्तक औ शिखा के स्थानों को मार्जन करे ।

व्यासः—धृत्वा पवित्रं सम्प्रोक्ष्य जपस्थानं कुशोदकैः । आधारादीन् नमस्कृत्य कुशाग्रैरासनं ततः ॥१॥ बद्धासिद्धासनं वापि स्वस्तिकं वा यथासुखम् । ॐ भूर्भुवः स्वरोमिति जपित्वासन-माविशेत् ॥२॥ पद्मे—अप्रोक्षितजपस्थाना-च्छक्रो हरति यज्जपम् । तस्माज्जपान्ते सम्प्रोक्ष्य ललाटे तिलकं क्रियात् ॥३॥ नृसिंहपुराणे—त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निबोधत । वाचिकश्च उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः ॥४॥ (त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयान्स्यादुत्तरोत्तरः) विश्वामित्रः—यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः । मन्त्र मुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः ॥५॥ शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ च चालयेत् । अपरैर्न श्रुतं किञ्चित्स उपांशु जपः स्मृतः ॥६॥ धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् । शब्दार्थचिन्त-नाभ्यासः स उक्तो मानसो जपः ॥७॥ (नोच्चै-र्जपं बुधः कुर्यात्सावित्र्याश्च विशेषतः) । मनुः—विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः । उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥८॥ धर्म-प्रवृत्तौ—मातर्नाभौ करं कृत्वा मध्याह्ने हृदि सं-

स्थितम् । सायं जपति नासाग्रे जपस्तु त्रिविधः स्मृतः ॥ ९ ॥ प्रातर्मध्याह्नयोस्तिष्ठन् गायत्रीजपमारभेत् । ऊर्ध्वजानुस्तु सायाह्ने ध्यानालोकनतत्परः ॥ १० ॥ कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं न्युब्जौ करौ तथा । मध्याह्ने हृदयस्थौ तु कृत्वा जपमुदीरयेत् ॥ ११ ॥ वृद्धमनुः—वस्त्रेणाच्छाद्य तु करं दक्षिणं यः सदा जपेत् । तस्य स्यात्सफलं जाप्यं * तद्धीनमफलं भवेत् ॥ १२ ॥ याज्ञवल्क्यः—

वेदाः साङ्गास्तु चत्वारोऽधीताः सर्वेऽथ वाङ्मयाः । गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः ॥ १३ ॥ ॐ कारः पूर्व मुच्चार्यो भूर्भुवः स्वस्तथैवच । गायत्री प्रणवश्चान्ते जप एवमुदाहृतः ॥ १४ ॥ सप्तभिः पावयेद्देहं दशभिः प्रापयेत्दिवम् । विंशत्यावर्तिता देवी नयते चेश्वरालयम् ॥ १५ ॥ अष्टोत्तरशतं जप्ता तारयेज्जन्मसागरात् । तीर्णो न पश्यति क्वापि जन्म मृत्युंहि दारुणम् ॥ १६ ॥ दशभिर्जन्म जनितं शतेन तु पुराकृतम् । त्रिजन्मजं सहस्रेण गायत्री हन्ति किल्बिषम् ॥ १७ ॥ गायत्रीकल्पे—

आरभ्यानामिकामध्यं पर्वाण्युक्तान्यनुक्रमात् । तर्जनीमूलपर्य्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ॥ १८ ॥

---

* आधारादि चक्रों को अथवा आसन इत्यादि को ।

टीका--व्यास का वचन है कि हाथ में कुश पवित्र धारण कर जप के स्थान को कुश के जल से प्रोक्षण कर और आधारादि* को नमस्कार कर ॥१॥ (ॐ भूर्भुवः स्वरोम्) इस मन्त्र को जपता हुआ सिद्धासन अथवा स्वस्तिकासन (जैसे सुखहो) लगा आसन पर बैठे ॥२॥ जपस्थान के प्रोक्षण नहीं करने से जप को शक्र (इन्द्र) हरलेता है इस कारण जप के अन्त में उस प्रोक्षण किये हुए स्थान की मट्टी लेकर तिलक लगावे ॥३॥ नृसिंहपुराण में लिखा है कि जप तीन प्रकार का है, वाचिक, उपांशु औ मानस, ॥४॥ (इन तीनों में से उत्तर से उत्तर श्रेष्ठ है), विश्वामित्र कहते हैं कि जो ऊच्च (उदात्त) नीच (अनुदात्त) औ (स्वरित) मात्राओं के संग पदों औ अक्षरों को ऐसा उच्चारण किया जावे कि शब्द दूसरे के कान तक सुनपड़े उसे वाचिक कहते हैं ॥५॥ और जो हौले २ होंठों को हिलाते हुए धीरे २ ऐसा उच्चारण किया जावे कि दूसरा न सुनसके उसे उपांशु कहते हैं ॥६॥ और जो अक्षर से अक्षर और पद से पद को ध्यान करते हुए केवल अर्थ की चिन्ता को

* आधारचक्र अर्थात् चतुर्दल इत्यादि चक्रों को नमस्कार करे।

जांवे औ होंठ अथवा जिह्वा कुछ न हिले उसे मानस जप कहतेहैं ॥ ७ ॥ मनुः---विधियज्ञ से जपयज्ञ श्रेष्ठ है, जिस में वाचिक का दशगुण, उपांशु का सौगुण, और मानस का सहस्रगुण अधिक फल है । ८ । धर्मप्रवृत्त में लिखा है कि, प्रातःकाल नाभी, मध्याह्न काल हृदय, और सायंकाल नासिका के समीप हाथ रख जपकरे ॥ ६ ॥ प्रातः और मध्याह्नकाल खड़े होकर और सायंकाल ऊर्ध्वजानु बैठकर ध्यान औ स्तुति में मन लगा जपकरे ॥ १० ॥ प्रातःकाल हाथ को उत्तान कर और सायंकाल नीचे मुंह कुछ टेढा झुकायेहुए औ मध्याह्न काल हाथ को हृदय में लगायेहुए जपकरे ११ वृद्धमनु का वचन है कि जो दाहिने हाथ को वस्त्र से छिपाकर जपकरताहै वह जप सफलहै अन्यथा निष्फल है (गोमुखी के भीतर जप करे) ॥ १२ ॥ जो पुरुष मनसा वाचा से चारों वेद वेदाङ्गों के सहित पढ़जावे किन्तु गायत्री न जानता हो उसका परिश्रम वृथा है १३ प्रणवसहित तीनों महाव्याहृतियों के साथ आदि औ अन्त में ॐकारसहित गायत्री जपनीचाहिये ॥ १४ ॥ सात गायत्री जपने से शरीर की पवित्रता, दश से स्वर्ग की प्राप्ति, औ बीस से परम धाम लाभ होताहै १५ १०८ से संसारसागर से छूटकर फिर जन्म मरण के

दुख में नहीं आता ॥ १६ ॥ दश गायत्री से इस जन्म के, सौ से पूर्वजन्म के, और हज़ार से तीन जन्मों के पाप नाश होजाते हैं ॥ १७ ॥ गायत्रीकल्प में लिखा है कि, यदि दश गायत्री जपनी हो तो अनामिका के मध्य गांठ से आरम्भ कर तर्जनी के जड़ तक जपनी चाहिये ॥ १८ ॥ (अंगुलियों पर सौ से अधिक जपना निषेध है)।

॥ जपमन्त्रः ॥

ॐकारस्य—ब्रह्मा ऋषिः। परमात्मा देवता। गायत्रीछन्दः ॥ भूर्भुवः स्वरिति महाव्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निवायुसूर्या देवताः। गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि ॥ ॐ तत्सवितुरित्यस्य—विश्वामित्र ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छन्दः। सर्वेषां जपे विनि०।

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुः

(यह गायत्री लाल पत्र के पृष्ठ १८ में देख लेना और जप में मंत्र के पीछे एक ॐकार लगादेना)।

एवम्प्रकार गायत्री जप के पश्चात् निम्न लिखित विधि से अष्टमुद्रा दिखलावे।

॥ ३७ ॥

अष्टमुद्राप्रदर्शनम् ।

सुरभिर्ज्ञानयोनीच शङ्खं चक्रंच पङ्कजम् ।
लिङ्गन्ततश्च मंहारो जपान्तेऽष्टौप्रदर्शयेत् ॥

गायत्रीजप के अन्त में इन आठों मुद्राओं को दिखलाना चाहिये ।

१ सुरभिः—अंगुलियों के गांसों को मिलाकर दाहिनी तर्जनी बांयीं मध्यमा से औ बांयीं तर्जनी दाहिनी मध्यमा से मिलाना फिर दाहिनी अनामिका बांयीं कनिष्ठिका से और बांयीं अनामिका दाहिनी कनिष्ठिका से मिल कर पृथ्वी की ओर दिखलाना जिस में गऊ के चारों स्तन के समान मुद्रा बनजाये ।

२ ज्ञानम्—दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी को मिलाकर * गोलाकार कुण्डल के समान बना कान

---

* मिलाने के समय तर्जनी अंगूठे के समीप तो होजावे किन्तु अग्रभाग थोड़ा दिलगरहे नहीं तो राजर्षिमुद्रा होजाने का भय है ।

के समीप वा हृदय के समीप लगाना।

३ योनिः—दाहिनी तर्जनी और मध्यमा से बांयीं अनामिका को औ बांयीं मध्यमा औ तर्जनी से दाहिनी अनामिका को पकड़ करतल को ऊपर की ओर कियेहुए दोनों ओर बलपूर्वक खींचना जिसमें मध्यमा का अग्रभाग मिलजावे, उन मिलेहुए मध्यमाओं के दूसरे गांठ पर कनिष्ठिकाओं को रखना फिर दोनों अँगूठों को कनिष्ठिकाओं के दूसरे गांठ पर रखना जिस में योनि की आकृति बनजावे।

४ शङ्खः—दाहिने हाथ की चारों अंगुलियों से बायां अंगूठा पकड़, मूठी बांध बांयीं तर्जनी औ दांयें अंगूठे का अग्रभाग मिला शङ्ख का स्वरूप बनाना।

५ चक्रम्—बायें हाथ के करतल पर दाहिना करतल रख दाहिनी कनिष्ठा को बायें अंगूठे से औ बांयीं कनिष्ठा को दाहिने अंगूठे से मिलारखना जिसमें चक्र का स्वरूप बनजावे (गुरु द्वारा जानलेना)।

६ पङ्कजम्—दोनों हथेलियों को संपुट कर कमल का स्वरूप बना हृदय के समीप रखना।

७ लिङ्गम्—दाहिनी मूठी बांधकर अंगूठे को सीधा करके बांयीं तर्जनी औ अंगूठे से शर्या की आकृति बनाना जिससे शिवलिङ्ग बनजावे (बनवाकर देखना)।

संहारः—बांयीं और दाहिनी हथेलियों के पृष्ठभाग को मिलाकर सब अंगुलियों को एक दूसरे से फंसा उलटा पेच दे कलेजे की ओर से उलटातेहुए आगे को बढ़ाकर दोनों भुजाओं को सीधा कर दोनों तर्जनियों को मिला आगे बढ़ादेना।

—:※:—

॥ ३८ ॥

जपनिवेदनम्।

विनियोगः—देवागातुविद इत्यस्य—मनसस्पतिर्ऋषिः। वातो देवता। विराट् छन्दः। जपनिवेदने विनि०

ॐ देवागातुविदो गातुं वित्त्वा गा-

तुमित । मनेसस्पतइमन्देवे यज्ञंस्वाहा वातेधाः ॥

शु० य० अ० ८ मन्त्र २१ ।

तत्पश्चात् आगे लिखे विधि से जपार्पण करे

——:#:——

॥ ३९ ॥

जपार्पणम् ।

अनेन प्रातःसन्ध्याङ्गभूतेनामुकसंख्याकेन अथवा यथाशक्ति गायत्रीमन्त्रजपाख्येन कर्मणा श्री भगवान् ब्रह्मस्वरूपी सूर्यनारायणः प्रीयतां न मम ॥

(इस मन्त्र से दोनों हाथों को जोड़ इष्ट-देव का ध्यान कर मनसा, वाचा, कर्मणा से जप के फल को उसी परब्रह्म में समर्पण कर निष्काम होजावे)

तत्पश्चात् दिग्देवता को नमस्कार करे ।

॥ ४० ॥

सूर्यादिदिग्देवतानां

नमस्काराः ।

नीचे लिखे मन्त्रों से सूर्य औ दशों दिशाओं के दिग्देवताओं को नमस्कार करे ।

विनियोगः—एकचक्र इत्यस्य—नारायण ऋषिः । सूर्यो देवता । उष्णिक् छन्दः । सूर्यनमस्कारे वि०

एकचक्रो रथोयस्य दिव्यः कनकभूषितः ।
स मे भवतु सुप्रीतः पद्महस्तो दिवाकरः ॥

ॐ गायत्र्यै नमः । ॐ सावित्र्यै नमः । ॐ सन्ध्यायै नमः । ॐ सरस्वत्यै नमः । प्राच्यां (पूर्व) दिशे—ओमिन्द्रायनमः । आग्नेय्याम्—ओमग्नये नमः । दक्षिणस्याम्—ॐ यमाय नमः । नैर्ऋत्याम्—ॐ नैर्ऋताय नमः । वारुण्याम्—ॐ वरुणाय नमः । वायव्याम्—ॐ वायवे नमः । उत्तरस्याम्—ॐ कुवेराय नमः । ऐशान्याम्—ओमीश्वराय नमः । ऊर्ध्वायाम्—ॐ ब्रह्मणे नमः । अधस्तात्—ॐ विष्णवे नमः ।

एवम्प्रकार जिस दिशा के सामने जौन देवता का नाम है उस ओर उसी देवता को हाथ जोड़ निश्चल मन हो नमस्कार करे । तत्पश्चात् प्रार्थना करे ।

—०—

॥ ४१ ॥

प्रार्थना ।

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः । केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥

एवम्प्रकार प्रार्थना करने के पश्चात् नीचे लिखे विधि से सन्ध्याविसर्जन करे ।

—०—

॥ ४२ ॥

सन्ध्याविसर्जनम् ।

हाथों को स्वस्तिकाकार * बना दोनों कर्णों को

* (×) इसी प्रकार दोनों हाथों को एक दूसरे के ऊपर रखने को स्वस्तिकाकार कहते हैं ।

स्पर्श करताहुआ नीचे लिखे मन्त्र से विसर्जन करे।

विनियोगः—उत्तरे शिखर इत्यस्य—कश्यप ऋषिः। सन्ध्या देवता। अनुष्टुप् छन्दः। सन्ध्याविसर्जने विनि०।

उत्तरेशिखरे देवि भूम्यां पर्वतमस्तके। ब्राह्मणेभ्यो विनिर्मुक्ता गच्छदेवि यथासुखम्॥

एवम्प्रकार विसर्जन के पश्चात् गोत्रप्रवरोच्चारण करे।

~~~

॥ ४७ ॥

गोत्रप्रवरोच्चारणम्।

"अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकप्रवरान्वितः शुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिन वाजसनेयशाखाध्यायीऽमुकशर्माहम्" इत्युच्चारयेत्॥
~~~

यथोदाहरणम्—गौतमगोत्रोत्पन्नो गौतमाङ्गिरसायास्येति त्रिप्रवरान्वितः शुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनवाजसनेयशाखाध्यायी नारायणभट्टशर्माऽहमिति।

तत्पश्चात् नीचे लिखे विधि से अभिवादन करे।

—:*:—

॥ ४४ ॥

अभिवादनम्।

जमदग्निः—देवप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वा त्रिदण्डिनम्। नमस्कारं न कुर्याच्चेत्प्रायश्चित्ती भवेद् द्विजः॥ १॥ यदि स्नातो भवेद्विप्रो मस्तके तिलकं विना। नमस्कारं न कुर्यात्तमिति प्रोचुर्मनीषिणः॥ २॥ हारीतभाष्ये—यस्य देशो न विज्ञातो नाम गोत्रं त्रिपूरुषम्। कन्यादाने पितृश्राद्धे नमस्कारंच वर्जयेत्॥ ३॥ नामदेवः—पाखण्डं पतितं व्रात्यं महापातकिनं शठम्। सोपानत्कं कृतघ्नंच नाभिवादेत्कदाचन॥ ४॥

धावन्तं प्रमत्तंच शूद्राचारकरं तथा । भुञ्जान मप्यनाचान्तं नास्तिकं नाभिवादयेत् ॥ ५ ॥ जप-न्तंच जलस्थंच समित्पुष्पकुशानलान् । उदपात्रं तथा भैक्षं वहन्तं नाभिवादयेत् ॥ ६ ॥ आह्निक कारिकासु—समित्पुष्पकुशाग्न्यम्बुमृत्तिकान्नतपाणिनः । जपं होमंच कुर्वाणा नाभिवाद्यास्तथ द्विजाः ॥ ७ ॥

टीका—जमदग्नि का वचन है कि देवता की प्रतिमा, औ त्रिदण्डी यदि (त्रिदण्ड धारी सन्यासी) को देख कर जो द्विज नमस्कार (अभिवादन) नहीं करता वह प्रायश्चित्ती होता है ॥ १ ॥ जो ब्राह्मण स्नान के पश्चात् तिलक नहीं करता उसे नमस्कार नहीं करना चाहिये यह बुद्धिमानों ने कहा है ॥ २ ॥ होलिभाष्य में लिखा है कि जिसके तीन वंश तक का देश, नाम, गोत्र ज्ञात न हो उसे कन्यादान औ पितृश्राद्ध कराना औ नमस्कार करना वर्जित है ॥ ३ ॥ नागदेव कहते हैं कि पाखण्डी, पतित, व्रात्य (अपने जाति से च्युत) महापापी, शठ, जूता रहने हुए, औ कृतघ्न, इतनों को नमस्कार (अभिवादन) नहीं करना ॥ ४ ॥ दौड़ता हुआ मतवाला, शूद्र का आचरन करने वाला, भोजन करता

हुआ, जूठामुंह औ नास्तिक, इतनों को अभिवादन नहीं करना ॥ ५ ॥ जप करता हुआ, जल में स्थित, लकड़ी, पुष्प, कुश, अग्नि, जलपात्र औ भैक्ष (भिक्षा से लब्ध) इतनी वस्तुओं को लियेहुए प्रणम्य पुरुषों को अभिवादन न करे ॥ ६ ॥ आह्निककारिका में लिखा है कि लकड़ी, पुष्प, कुश, अग्नि, जल, मट्टी औ अक्षत इतनी वस्तुओं को हाथ में लियेहुए औ जप होम करते हुए ब्राह्मणों को नमस्कार नहीं करना ॥ ७ ॥

अभिवादनमन्त्राः ।

भो आचार्य्य त्वामभिवादये । भो वैश्वानर त्वामभिवादये । भो सूर्याचन्द्रमसौ युवामभिवादये । भो याज्ञवल्क्य त्वामभिवादये । भो ईश्वर त्वामभिवादये । आकाशात्पतितं तोयँ यथा गच्छति सागरम् । सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

एवम्प्रकार अभिवादन के पश्चात् फिर द्विराचमन करे ।

॥ ४५ ॥

पुनर्द्विराचमनम् ।

वैसही जैसे पृष्ठ १२७ अंक २४ में। तत्पश्चात् ईश्वरस्तुति करे।

—:*:—

॥ ४६ ॥

ईश्वरस्तुतिः ।

यस्य स्मृत्याच नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

इस श्लोक को पढ़ (सहस्र शीर्षा) अर्थात् पुरुष-सूक्त से परमात्मा की स्तुति कर उक्त कियेहुए कर्मों को ईश्वर में अर्पण करे—अनेन प्रातः सन्ध्योपासनाख्येन कर्मणा श्री भगवान् ब्रह्मस्वरूपी परमेश्वरः प्रीयतां न मम ॥ तत्पश्चात् शिखा खोल देवे।

॥ ४७ ॥

शिखामुक्ति ।

मनुः—शौचेतु शयने सङ्गे भोजने दन्तधावने ।
शिखामुक्तिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत् ॥

अर्थात् शौच, शयन, मैथुन, भोजन, दन्तधावन इतने समय शिखा खुली रहनी चाहिये ॥ इसी प्रकार सन्ध्या के अन्त में भी ईश्वरस्तुति औ अर्पण कर शिखा खोलदेनी चाहिये ।

शिखामुक्तिमन्त्रः ।

ब्रह्मपाशसहस्रेण रुद्रशूलशतेन च ।
विष्णुचक्रसहस्रेण शिखामुक्तिं करोम्यहम् ॥

एवम्प्रकार शिखामुक्ति के पश्चात् थोड़ा मौन होकर ठहरजावे, फिर शिखाबन्धन करे ।

—:※:—

॥ ४८ ॥

शिखाबन्धनम् ।

पृष्ठ ६६ में दियेहुए शिखाबन्धनमन्त्र से शिखा

अथ नीचे लिखी रीतिसे सन्ध्याङ्ग भूतगायत्रीतर्पण करे ।

—:०:—

॥ ४९ ॥

सन्ध्याङ्गगायत्रीतर्पणम्।

विनियोगः—गायत्र्या—विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । गायत्रीतर्पणे विनि० ।

ॐ भूः—ऋग्वेदपुरुषम् तर्पयामि । ॐ भुवः—यजुर्वेदपुरु० तर्प० । ॐ स्वः—सामवेद पुरु० तर्प० । ॐ महः—अथर्ववेदपुरु० तर्प० । ॐ जनः—इतिहासपुराणपुरु० तर्प० । ॐ तपः—सर्वागमपुरु० तर्प० । ॐ सत्यम्—सत्यलोक पुरु० तर्प० । ॐ भूः—भूलोकपुरु० तर्प० । ॐ भुवः—भुवर्लोकपुरु० तर्प० । ॐ स्वः—स्वर्लोक पुरु० तर्प० । ॐ भूः—एकपदां गायत्रीम् तर्प० । ॐ भुवः—द्विपदां गायत्रीम् तर्प० । ॐ स्वः—त्रिपदां गा० तर्प० । ॐ भूर्भुवः स्वः—चतुष्पदां

गा० तर्प० । ॐ उपसीम्---तर्प० । ॐ सरस्वतीम्---तर्प० । ,, सावित्रीम्---तर्प० । ॐ सरस्वतीम्---तर्प० । ,, वेदमातरम्---तर्प० । ॐ पृथिवीम्---तर्प० । ,, अजाम्---तर्प० । ॐ कौशिकीम्---तर्प० । ॐ सङ्कृतीम्---तर्प० । ॐ सर्वजितम्---तर्प० ।

एवम्प्रकार गायत्रीतर्पण के पश्चात् नीचे लिखे मन्त्र से सन्ध्याभूमृत्तिकावन्दन करे ।

॥ ५० ॥

सन्ध्याभूमृत्तिका-वन्दनम् ।

ॐ भूर्भुवः स्वः (गायत्री मन्त्र से) फिर स्वः भुवः भूः ॐ । ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः ।
इन मन्त्रों से जिस भूमि पर सन्ध्या कीगई है उसकी मृत्तिका की वन्दना कर प्रातः सन्ध्या समाप्त करे ।

इति शु० य० मा० प्रातःसन्ध्या प्रयोगः ।

अथ माध्यन्दिनीयमध्याह्नसन्ध्या ।

सब विधि प्रातः सन्ध्यावत् केवल अंक १९—अम्बुप्राशन ॥ अंक २०—अर्घ्यदान ॥ अंक २८—गायत्र्यावाहन ॥ अंक ३२—उपस्थान ॥ में जो थोड़े मन्त्रों का भेद है वह नीचे स्पष्ट कर दिखला-दिया जाता है ।

अंक १९—**अम्बुप्राशनम्** मध्याह्ने चमनमन्त्र

विनियोगः—ॐ आपः पुनन्त्विति मन्त्रस्य । नारायण ऋषिः । आपोदेवता । गायत्री छन्दः । अम्बुप्राशने विनियोगः ।

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम् । पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम् ॥ यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम । सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहꣳ स्वाहा ॥ (इस मन्त्र से मध्याह्नकाल में अम्बुप्राशन करे ।)

अंक २० **अर्घ्यदानम्**—आकृष्णेनेत्यनेन मन्त्रेणैकमर्घ्यं दद्यात् ॥ अर्थात् गायत्री मन्त्र से अभिमंत्रण कर पुष्प अथवा बिल्वपत्र मिलाहुआ

जल अञ्जलि में ले उठकर हाथ ऊपर उठा 'ॐ आकृष्णेन, (देखो पृष्ठ ११२) इस मन्त्र से सूर्य को एकही अर्घ्य मध्याह्नकाल में देवे।

अंक २८—**गायत्र्यावाहन** के स्थान में 'सावित्र्यावाहन' कहा जावेगा क्योंकि मध्याह्नकाल की सन्ध्या सावित्री नाम से प्रसिद्ध है (देखो पृष्ठ ६)

सावित्र्यावाहन मन्त्रः—ॐतेजोऽसि (देखो पृष्ठ १२७) इस मन्त्र के साथ निम्न लिखित मन्त्र को भी पढ़ना होगा।

ॐ सावित्रीं युवतीं श्वेताङ्गीं श्वेतवाससं त्रिनेत्रां वरदाक्षमालां त्रिशूलाऽभयहस्तां वृषभारूढां यजुर्वेदसंहितां रुद्रदैवत्यां तमोगुणयुतां भुवर्लोकव्यवस्थितां आदित्यपथगामिनीम् । आवाहयाम्यहं देवीमायान्तीं सूर्यमण्डलात् । आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे रुद्रवादिनि । वरदां त्र्यक्षरां साक्षाद् देवि ह्यावाहयाम्यहम् । सावित्रि छन्दसां माता रुद्रयोनि नमोऽस्तु ते ॥
(इस मन्त्र से अवाहन करे।)

अंक ३९. **जपार्पणम्**—अनेनमध्याह्नसन्ध्याङ्गभूतेन यथाशक्ति कृतेन गायत्रीमन्त्र जप-

कर्मणा श्रीभगवान् रुद्रस्वरूपी सविता देवता प्रीयतां न मम ॥ (इस मन्त्र से अर्पण करे)।

शेष प्रातःसन्ध्यावत् केवल अंक ४१ की क्रिया अर्थात् सन्ध्याङ्गतर्पण नहीं करना चाहिये।

इति मा० मध्याह्नसन्ध्याप्रयोगः।

——:॥:——

अथ माध्यन्दिनीयसायंसन्ध्या।

सब विधि प्रात.सन्ध्यावत् केवल अंक १४—अम्बुप्राशन। अंक २०—अर्घ्यदान। अंक २८—गायत्र्यावाहन। औ अंक ३९—जपार्पण। में जो कुछ थोड़ा भेद है वह नीचे वर्णन किया जाता है।

अंक १४. अम्बुप्राशनम् (सायमाचमनम्)

विनियोगः—ओमग्निश्चमेति मन्त्रस्य—नारायण ऋषि.। अग्निर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः अम्बुप्राशने वि०

ओमग्निश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षम्। मनसा वाचा हस्ताभ्याम्। पद्भ्यामुदरेण शिश्ना।

अहस्तदवलुम्पतु । यत्किञ्चिद्दुरितं मयि । इदमहं मामममृतयोनौ । सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥
(इस मन्त्र से सायंकाल पश्चिम मुख बैठ अम्बुप्राशन करे)

अंक २७. अर्घ्यदानम् (प्रणवव्याहृतिपूर्वया सावित्र्या त्रिरर्घ्यं दद्यात्) ।

गृह्यपरिशिष्टसूत्रे—अथाचम्य दर्भपाणिः पूर्णमुदकाञ्जलिमुद्धृत्यादित्याभिमुखः स्थित्वा प्रणवव्याहृतिपूर्वया सावित्र्या त्रिरर्घ्यं निवेद्य क्षिपेदिति ॥

टीका—आचमन कर हाथ में कुश लियेहुए पूर्ण अञ्जलि में जल ले सूर्याभिमुख अर्थात् पश्चिममुख खड़े हो महाव्याहृतियों के सहित सावित्री मन्त्र से तीन अर्घ्य देवे (देखो सावित्री मन्त्र लाल पत्र पृष्ठ ख) ।

अंक २८. आवाहनम्—गायत्र्यावाहन के स्थान में सरस्वत्यावाहन कहा जावेगा क्योंकि सायंकाल की गायत्री, सरस्वती नाम से प्रसिद्ध है ।
आवाहन मन्त्रः—ॐ तेजोऽसि (देखो पृष्ठ १२७) इस मन्त्र के साथ निम्नलिखित मन्त्र भी पढ़ना होगा ।

ॐ वृद्धां सरस्वतीं कृष्णां पीतवस्त्रां* चतुर्भुजाम् । शङ्खचक्रगदापद्महस्तां गरुडवाहिनीम् । सामवेदकृतोत्सङ्गां सर्वलक्षणसंयुताम् । वैष्णवीं विष्णुदेवत्यां विष्णुलोकनिवासिनीम् । आवाहयाम्यहं देवीमायान्तीं विष्णुमण्डलात् । आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे विष्णुवादिनि । सरस्वती छन्दसां मातर्विष्णुयोनि नमोऽस्तु ते ॥

३९ जपार्पणम्—अनेन सायं सन्ध्याङ्गभूतेन वृद्धगोत्रधारिण्या गायत्र्या यथाशक्ति कृतेन जपकर्मणा श्रीभगवान् विष्णुस्वरूपी सविता देवता प्रीयतां न मम ॥

और सब विधि प्रातःसन्ध्यावत् केवल सन्ध्याङ्ग गायत्रीतर्पण नहीं करना होगा ।

इति सायंसन्ध्याप्रयोगः ।

इति शु० यजुर्वेदीयमाध्यन्दिनशाखीय सन्ध्याप्रयोगः ।

---

* क्वचित् पुस्तकेषु 'कृष्णवस्त्रां' एवमपि पाठो दृश्यते ।

॥ अथ ॥

शु० य० काण्वशाखीय सन्ध्याविधिः ।

सब विधि माध्यन्दिनशाखा के अनुसार ही करना होगा केवल अंक १२. पुनराचमन । अंक २१. सूर्योपस्थान । अंक २२. सूर्यप्रदक्षिणा में जो थोड़ा अन्तर है वह नीचे दिखलाया जाता है।

अंक १२. पुनराचमन 'ऋतञ्च सत्यं' मंत्र (देखो पृष्ठ १०८) से करना होगा ।

अंक २१. सूर्योपस्थान में उद्वयंतमसः । उदुत्यंजातवेदसम् । चित्रंदेवानाम् । तच्चक्षुर्देव-हितम् । इन चारों के पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों को अधिक पढ़ना होगा ।

विनियोगः—ॐ स्वयम्भूरसीति मन्त्रस्य—प्रजापति ऋषिः । याजुषीउष्णिक्छन्दः । सूर्यो-देवता । सूर्योपस्थाने विनियोगः ।

ॐ स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि । शु० य० अ० २ मन्त्र २६ ।

विनियोगः—ॐ आकृष्णेनेत्यस्य—हिरण्यस्तूप ऋषिः । त्रिष्टुप्छन्दः । सविता देवता । सूर्योपस्थाने वि० ।

ॐ आकृष्णेन रजसा (देखो पृष्ठ ११२)।

विनियोगः—प्रजापति ऋषिः । याजुषि बृहतीछन्दः । सूर्योदेवता । सूर्यप्रदक्षिणायां वि०

अंक २२. सूर्यप्रदक्षिणा [सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्ते]
इसी मन्त्र से प्रदक्षिणा करनी होगी (शु० य० अ० २ मन्त्र २६ का अन्तिम भाग)।

अथ माध्यन्दिनशाखावत् ।

शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनशाखा के तीनों काल की सन्ध्या में जो कुछ अन्तर है इस काण्वशाखा के मध्याह्न औ सायं में भी वैसाही जानना ।

इति काण्वशाखीयसन्ध्याप्रयोगः ।

॥ अथ ॥

कृष्ण य० तैत्तिरीय सन्ध्याविधिः ।

सब विधि यजुर्वेदीयमाध्यन्दिनशाखा -- --
सारही करना होगा केवल । अंक १६. पुनर्मार्जन । अंक २०, अर्घ्यदान । अंक २१. सूर्य्योपस्थान । अंक २८. गायत्र्यावाहन । अंक ३०. गायत्री रूप । अंक ३६. गायत्री जप । अंक ४०. दिग्देवता नमस्कार । अंक ४१. प्रार्थना । अंक ४२. सन्ध्याविसर्जन । में जो कुछ अन्तर है वह आगे दिखलाया जाता है ।

अंक १६ **पुनर्मार्जन**—नीचे लिखे मन्त्रों से किया जावेगा ।

विनियोगः—ॐ दधिक्राव्ण इति पञ्चर्चस्य—दधिक्रा ऋषिः । अनुष्टुप्छन्दः । अश्वो देवता । पुनर्मार्जने विनियोगः ।

ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ (तै० सं० का० १ प्र० ५ अ० ११)

ॐ हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः । अग्निं या गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥

तै० सं० का० ५ प्र० ६ अ० १ ।

ॐ यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् । मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥

तै० सं० का० ५ प्र० ६ अ० १ ।

ॐ यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति । याः पृथिवीं पयसोन्दन्ति शुक्रास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥

तै० सं० का० ५ प्र० ६ अ० १ ।

ॐ शिवेन मा चक्षुषा पश्यताऽऽपः शिवया

तनुनोपस्पृशतु त्वचं मे । सर्वांॐ अग्नीॐरप्सुष-
दो हुवे यो मयि वर्चो बलमोजो निधत्त ॥

तै० सं० का० ५ प्र० ६ अ० १ ।

अंक २०. अर्घ्यदानम्—प्रातः, सायं तो मध्यन्दिनशाखा के अनुसारही गायत्री मन्त्र से देना होगा किन्तु मध्याह्नकाल की सन्ध्या में नीचे लिखे मन्त्र से अर्घ्य देनाहोगा ।

विनियोगः—ॐ. हॐस इत्यस्य—वामदेव ऋषिः । अतिजगती छन्दः । सूर्योदेवता । अर्घ्यदाने वि० ।

ॐ हॐसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदति-
थिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा
अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥

तै० आ० प्र० १० अ० ४० ।

अंक २१. सूर्य्योपस्थानम्—तीनो काल के उपस्थान मन्त्रों में जो भेद है, वह नीचे स्पष्ट कर दिखलाया जाता है ।

प्रातरुपस्थानम्—माध्यन्दिनशाखा में जो चार मन्त्र उपस्थान के कहे गये हैं उन से अधिक

नीचे लिखे मन्त्रों को भी पढ़ प्रातरुपस्थान करना होगा ।

विनियोगः—ॐ मित्रस्येति त्र्यृचस्य—विश्वामित्र ऋषिः । निचृद्गायत्री छन्दः । मित्रो देवता । सूर्योपस्थाने विनियोगः ।

ॐ मित्रस्य चर्षणीधृतः श्रवो देवस्य सानसिम् । सत्यं चित्रश्रवस्तमम् ॥

तै० सं० का० ३ प्र० ४ अ० ११ ।

ॐ मित्रो जनान्यातयति प्रजानन्मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् । मित्रः कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे सत्याय हव्यं घृतवद्विधेम ॥

तै० सं० का० ३ प्र० ४ अ० ११ ।

ॐ प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन । न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥

तै० सं० का० ३ प्र० ४ अ० ११ ।

मध्याह्नोपस्थानम्—प्रातरुपस्थान के अनुसार ही माध्यन्दिन के चारों मन्त्रों के साथ नीचे लिखे

मन्त्रों को अधिक पढ़ना होगा ।

विनियोगः—आसत्येन यउद्गानितिद्वयोः (हिरण्यस्तूप ऋषिः । त्रिष्टुप्छन्दः । सविता देवता । सूर्योपस्थाने विनि० ।

ॐ आ सत्येन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवना विपश्यन् ॥ तै० सं० का० प्र० ४ अ० ११ ।

ॐ य उदगान्महतोऽर्णवाद्विभ्राजमानः सरिरस्य मध्यात्स मा वृषभो लोहिताक्षः सूर्यो विपश्चिन्मनसा पुनातु ॥ तै० आ० प्र० ४ अ० ४२ ।

सायमुपस्थानम्—उक्त प्रकार ही नीचे लिखे मन्त्रों को अधिक पढ़ना होगा ।

विनियोगः—इमम्मे. इत्यस्य—शुनःशेफ ऋषिः । गायत्री छन्दः । वरुणो देवता । सूर्योपस्थाने विनि० ।

ॐ इमम्मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥ तै० सं० का० २ प्र० १ अ० ११

विनियोगः—ॐ तत्वा यामीति चतसृणां—शुनःशेप ऋषिः। त्रिष्टुप्छन्दः। वरुणो देवता। सूर्योपस्थाने वि०।

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्यु-रुशꣳस मा न आयुः प्रमोषीः॥

तै० सं० का० २ प्र० १ अ० ११।

ॐ यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्र-तम्। मिनीमसि द्यवि द्यवि॥

तै० सं० का० ३ प्र० ४ अ० ११।

ॐ यत्किंचेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनु-ष्याश्चरामसि। अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः॥

तै० सं० का० ३ प्र० ४ अ० ११।

ॐ कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा स-त्यमुत यन्न विद्म। सर्वा ता विष्य शिथिरेव देवाथा ते स्याम वरुण प्रियासः॥

तै० सं० का० ३ प्र० ४ अ० ११।

अंक २६ गायत्र्यावाहन—तैत्तिरीयशाखा वालों को नीचे लिखे मन्त्र से आवाहन करना होगा।

विनियोगः—ओजोऽसीत्यस्य—परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः। आज्यं देवता। जगती छन्दः। गायत्र्यावाहने विनियोगः।

ॐ ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धामनामाऽसि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूरों गायत्रीमावाहयामि सावित्रीमावाहयामि सरस्वतीमावाहयामि छन्दर्षीनावाहयामि श्रियमावाहयामि ॥ तै. आ. प्र. १० अ. ३५।

अंक ३०. गायत्रीरूपम्—गायत्र्या—गायत्रीछन्दः। विश्वामित्र ऋषिः। सविता देवता। अग्निर्मुखं। ब्रह्माशिरो। विष्णु हृदयम्। रुद्रः शिखा। पृथिवी योनिः। प्राणापानव्यानोदानसमानाः प्राणाः। श्वेतवर्णा। साङ्ख्यायनगोत्रा। गायत्री चतुर्विंशत्यक्षरा त्रिपदा। षट्कुक्षिः। पञ्चशीर्षोपनयने विनियोगः।

ॐ तत्सवितुः (देखो लाल पृष्ठ ख)।

अंक ३९---गायत्रीजपः---सब विधि माध्यन्दिनशाखा के अनुसारहीं है केवल जप से पूर्व (ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म) इतना अधिक पढ़ लेनाहोगा।

अंक ४०. दिग्देवतानां नमस्कारः

तैत्तिरीयसन्ध्यावालों को नीचे लिखे मन्त्र से दिग्देवताओं को नमस्कार करनाहोगा।

ॐ नमः प्राच्यै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रति-वसन्त्येताभ्यश्च नमो नमो दक्षिणायै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रति० नमो नमः प्रतीच्यै दिशे याश्च

" प्रति० " नम उदीच्यै "

" प्रति० " " ऊर्ध्वायै "

" प्रति० " नमो अधरायै "

" प्रति० " " अवान्तरायै "

" प्रति० " " गङ्गायमुनयोर्मध्ये ये वसन्ति ते मे प्रसन्नात्मानश्चिरं जीवितं वर्धयन्ति नमो गङ्गायमुनयोर्मुनिभ्यश्च नमो नमो गङ्गायमुन-योर्मुनिभ्यश्च नमः॥ (तै० आ० प्र० २ अ० २)

ॐ कामोऽकार्षीन्नमोनमः, तै० आ० प्र० १० अ० ६१

ॐ मन्युरकार्षीन्नमोनमः, तै० आ० प्र० १ अ० ६२

अंक ४१ प्रार्थना

नीचे लिखे मन्त्र से प्रार्थना करे।

ॐ यांसदा सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च। सायं प्रातर्नमस्यन्ति सा मा सन्ध्या अभिरक्षत्वों नमः॥

तै० आ० प्र० २ अ० २०।

अंक ४२. सन्ध्याविसर्जनम् नीचे लिखे मन्त्र से सन्ध्याविसर्जन करनाहोगा।

विनियोगः—उत्तमे शिखर इत्यस्य—कश्यप ऋषिः। सन्ध्यादेवता। अनुष्टुप्छन्दः। सन्ध्याविसर्जने विनि०।

ओमुत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमूर्धनि। ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्॥ (तै० आ० प्र० १०, अ० ३६)

इस तैत्तिरीयशाखा वालों को एक क्रिया यह अधिक करनीपड़ेगी कि नीचे लिखे मन्त्र से द्युलोक और पृथिवी की स्तुति करनीहोगी।

ओमिदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु। पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम्। भूतं देवानामवमे अवोभिः। विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥

(तै० आ० का० २ प्र० ८ अ० ४)

मध्याह्न * और सायं भी इसी प्रकार जानना।

इति य० तैत्तिरीयसन्ध्याप्रयोगः।

——:※:——

कृ० य० हिरण्यकेशीय सन्ध्याविधिः।

सब क्रियायें तैत्तिरीयसन्ध्या के अनुसारही करनी

---

* जोकुछ दो एक मन्त्रों का प्रातः मध्याह्न और सायं में अन्तर है वह पूर्वही दिखा आए हैं।

चाहिये, केवल । अंक ७. आचमन । अंक १३. मार्जन । अंक ३२. गायत्रीप्रार्थना । अंक ४०. दिग्देवता नमस्कार । अंक ४२. सन्ध्याविसर्जन । अंक ४४. अभिवादन । में जो मन्त्रों की अधिकता है वह इस स्थान में स्पष्ट कर दिखलाई जाती है ।

अंक ७ **आचमन** में आपोहिष्ठा, (देखो पृष्ठ १००) के साथ नीचे लिखाहुआ मन्त्र अधिक पढ़ना होगा ।

ओमापो वा इद ँ सर्वं विश्वा भूतान्यापः प्राणो वा आपः पशव आपोऽन्नमापोऽमृतमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापश्छन्दा ँ स्यापो ज्योती ँ ष्यापो यजू ँ ष्यापः सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवः सुवराप ओ३म् ॥

तै० आ० प्र० १० अ० २१ ।

अंक १३. **मार्जनम्**—ओमापोहिष्ठा मयोभुवः—के साथ नीचे लिखेहुए मन्त्रों को अधिक पढ़ना होगा और सब मन्त्र तैत्तिरीय पुनर्मार्जन के समानही हैं ।

ओ३म् पवमानः सुवर्जनः । पवित्रेण विचर्षणिः ।

यः पोता स पुनातु मा ॥ १ ॥ ॐ पुनन्तु मा देवजनाः । पुनन्तु मनवो धिया । पुनन्तु विश्व आयवः ॥ २ ॥ ॐ जातवेदः पवित्रवत् । पवित्रेण पुनाहि मा । शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतूँरनु ॥ ३ ॥ ॐ यत्ते पवित्रमर्चिषि । अग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीमहे ॥ ४ ॥ ओमुभा-भ्यां देव सवितः । पवित्रेण सवेन च । इदं ब्रह्म पुनीमहे ॥ ५ ॥ ॐ वैश्वदेवी पुनती देव्यागात् । यस्यै बह्वीस्तनुवो वीतपृष्ठाः । तया मदन्तः सध-माद्येषु । वयँस्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥ ॐ वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु । वातः प्राणेने-षिरो मयोभूः । द्यावापृथिवी पयसा पयोभिः । ऋतावरी यज्ञिये मा पुनीताम् ॥ ७ ॥ ॐ बृहद्भिः सवितस्तृभिः । वर्षिष्ठैर्देव मन्मभिः । अग्ने दक्षैः पुनाहि मा ॥ ८ ॥ ॐ येन देवा अपुनत । येनाऽऽ-पो दिव्यंकशः । तेन दिव्येन ब्रह्मणा । इदं ब्रह्म पुनीमहे ॥ ९ ॥ ॐ यः पावमानीरध्येति । ऋषिभिः

संभृतꣳरसम् । सर्वꣳस पूतमश्नाति । स्वदितं मातरिश्वना ॥ १० ॥ ॐ पावमानीर्यो अध्येति । ऋषिभिः संभृतꣳरसम् । तस्मै सरस्वती दुहे । क्षीरꣳसर्पिर्मधूदकम् ॥ ११ ॥ ॐ पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि पयस्वतीः । ऋषिभिः संभृतो रसः ब्राह्मणेष्वमृतꣳ हितम् ॥ १२ ॥ ॐ पावमानीर्दिशन्तु नः । इमं लोकमथो अमुम् । कामान्त्समर्धयन्तु नः । देवीर्देवैः समाभृताः ॥ १३ ॥ ॐ पावमानीः स्वस्त्ययनीः । सुदुघा हि घृतश्चुतः । ऋषिभिः संभृतो रसः । ब्राह्मणेष्वमृतꣳ हितम् ॥ १४ ॥ ॐ येन देवाः पवित्रेण । आत्मानं पुनते सदा । तेन सहस्रधारेण । पावमान्यः पुनन्तु मा ॥ १५ ॥ ॐ प्राजापत्यं पवित्रम् । शतोद्यामꣳहिरण्मयम् । तेन ब्रह्मविदो वयम् । पूतं ब्रह्म पुनीमहे ॥ १६ ॥ ओमिन्द्रः सुनीती सह मा पुनातु । सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या । यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा । जातवेदा मोर्जयन्त्या पुनातु ॥१७॥ (तै० ब्रा० का० १ प्र० ४ अ० ८)

अंक ४०. दिग्देवता नमस्कारा:—सब मन्त्र वैसे ही जैसे तैत्तिरीय में केवल । ओंमान्तरदिशाभ्यां नमः (के साथ) संस्रवन्तु दिशो मयि समागच्छन्तु सूनृताः सर्वकामा अभियन्तु नः प्रिया अभिश्रवन्तु नः प्रिया अभिवादये । इतना अधिक पढ़ना होगा।

अंक ४२. सन्ध्याविसर्जनम्—वैसे ही जैसे तैत्तिरीयशाखा में केवल नीचे लिखेहुए मन्त्रों को अधिक पढ़ना होगा।

ॐ स्तुतो मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ती पवने द्विजाता । आयुः पृथिव्यां द्रविणं ब्रह्म वर्चसं मह्यं दत्त्वा प्रजातुं ब्रह्मलोकम्॥

तै० आ० प्र० १० अ० ३६।

ॐ घृणिः सूर्य आदित्यो न प्रभा वात्यक्षरम् । मधु क्षरन्ति तद्रसम् । सत्यं वै तद्रसमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म

भूर्भुवः सुवरोम् । (तै० आ० प्र० १० अ० ३७)

अंक ४४. अभिवादनम्—वैसेही जैसे माध्यन्दिनसन्ध्या में केवल नीचे लिखे मन्त्रों को अधिक पढ़ना होगा।

ॐ ब्रह्मलोकायनमः । विष्णुलोकायनमः । रुद्रलोकायनमः । सन्ध्यायैनमः । विद्यायैनमः । सरस्वत्यैनमः । वेदायनमः । वेदपुरुषायनमः । इष्टदेवताभ्योनमः । कुलदेवताभ्योनमः । स्थान देवताभ्योनमः । वास्तुदेवताभ्योनमः । एतत्कर्म प्रधानदेवताभ्योनमः । सर्वेभ्योदेवेभ्योनमः । सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमोनमः ।

ओमाकाशात्पतितंतोयं यथागच्छतिसागरम् । सर्वदेवनमस्कारः केशवंप्रतिगच्छति ॥

तत्पश्चात् केशवाय नमः । नारायणाय नम इत्यादि मन्त्रों से आचमन कर प्राणायाम के सहित "सन्ध्यार्पण" वैसेही करे जैसे पूर्व की शाखाओं में। केवल नीचे लिखा हुआ मन्त्र अधिक पढ़े।

ॐ वर्षट्ते विष्णवास आकृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् । वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

तै० सं० का० २ प्र० २ अं १२ ।

मध्याह्न * औ सायं भी इसी प्रकार करनाहोगा केवल सूर्योपस्थान में जो थोड़ा भेद है वह यह है कि 'मध्याह्नोपस्थान' में उद्वयम् । उदुत्यम् । चित्रम् । तच्चक्षुः † । इन चारों के साथ निचला मन्त्र अधिक पढ़नाहोगा ।

ॐ य उदगान्महतो (देखो पृष्ठ १६६) ।

और 'सायमुपस्थान' में 'इमिंमे वरुण' (देखो पृष्ठ १६६) 'ॐ तत्त्वायामि' औ 'ॐ यच्चिद्धिते'

---

* जहां २ जोकुछ अन्तर है वह तैत्तिरीय में भली भांति दिखला आयेहैं ।

† अदीना :स्याम के स्थान में अजीताः स्याम और 'भूयश्च शरदः शतात्' के स्थान में 'ज्योक् च सूर्यंदृशे' बदल देनाहोगा ।

(देखो पृष्ठ १६७) इन मन्त्रों के साथ निचले दो मन्त्रों को अधिक पढ़ना होगा ।

ॐ त्वं नो॑ अग्ने॒ वरु॑णस्य वि॒द्वान्दे॒वस्य॒ हेडो॑ऽव॒यासि॑सीष्ठाः । यजि॑ष्ठो॒ वह्नि॑तमः॒ शोशु॑चानो॒ विश्वा॒ द्वेषा॑ᳬसि॒ प्रमु॑मुग्ध्य॒स्मत् ॥

तै० सं० का० २ प्र० ५ अ० १२ ।

ॐ स त्वं नो॑ अग्नेऽव॒मो भ॑वो॒ती नेदि॑ष्ठो अ॒स्या उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टौ । अव॑ यक्ष्व नो॒ वरु॑ण॒ᳬ ररा॑णो वी॒हि मृ॑डी॒कᳬसु॒हवो॑ न एधि ॥

तै० सं० का० २ प्र० ५ अ० १२ ।

——:*:——

ऋग्वेदीयसन्ध्याविधिः

विदित होवे कि ऋग्वेदवाले किसी भी शाखा के हों आगे कथनकीहुई रीति से सन्ध्या करें ।

सब क्रियायें शु० य० माध्यन्दिनशाखा के अनुसारही करनीहोंगी केवल अंक ४. भस्मधारण। अंक ६. पवित्रधारण। अंक १३. मार्जन। अंक २०. अर्घ्यदान। अंक २१. सूर्योपस्थान। अंक २७. गायत्री षड्ङ्गन्यास। अंक ३०. गायत्री ध्यान। अंक ४०. सूर्यादिदेवतानमस्कार। अंक ४२. सन्ध्याविसर्जन। अंक ५० सन्ध्या भूमृत्तिकावन्दन। में जो थोड़ा अन्तर है इस स्थान में स्पष्ट कर वर्णन कियाजाताहै।

अंक ४. **भस्मधारणम्** (तिलकः) यदि भस्मधारण करना हो तो सब विधि शु० य० माध्यन्दिनशाखा के अनुसारही करनाहोगा किन्तु तिलक धारण करने में तिलक के जल को गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रण कर नीचे लिखे मन्त्रों से 'मृत्तिकामर्दन' औ 'तिलकधारण' करनाहोगा।

ऋ० वे० मृत्तिकामर्दनमन्त्रः।

विनियोगः—ॐ तद्विष्णोरिति मन्त्रस्य—काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः। विष्णुर्देवता। गायत्रीछन्दः। मृत्तिकाभिमन्त्रणे वि०।

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम् ॥

तिलकधारणमन्त्रः ।

विनियोगः—ओमतोदेवेतिमन्त्रस्य—काण्वोमेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । गायत्रीछन्दः । तिलकधारणे वि० ।

ओमतो देवाऽअवन्तुनो यतो विष्णुर्विचक्रमे पृथिव्या सप्तधामभिः ॥

अंक ९. पवित्रधारणम् ।

ऋग्वेदवालों को प्रथम सप्तव्याहृतियों के साथ नीचे लिखे मन्त्र से पवित्रधारण करनाहोगा । सप्तव्याहृति ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः इत्यादि (देखो पृष्ठ ८४, ८५) ।

विनियोगः—ॐ पवित्रवन्त इत्यादि मन्त्रयो—ब्रह्मा ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । जगतीछन्दः । पवित्रधारणे विनि० ।

ॐ पवित्रवन्तः परिवाचमासते पितैषां प्रत्नो ऽभिरक्षति व्रतम् । महः समुद्रं वरुणस्तिरोदधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥ १ ॥ ॐ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो ऽअश्नुते शृतास ऽइद्वहन्तस्तत्समाशत ॥ १ ॥

ऋ० सं० अ० ७ अ० ३ व० ८ मं० १

(१) ऋ० सं० अ० ७ अ० २ व० २१ मं० ३ ।

अंक १३. मार्जनम् ।

ऋग्वेदवाले किसी भी शाखा के हों गायत्री मन्त्र के साथ नीचे लिखे मन्त्रों से मार्जन करें ।

विनियोगः—आपोहिष्ठेति नवर्चस्य सूक्तस्य अम्बरीषः सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता । गायत्रीछन्दः पञ्चमी वर्द्धमाना । सप्तमी प्रतिष्ठा । अन्त्येद्वे अनुष्टुभौ मार्जने विनियोगः ।

'ओमापोहिष्ठा०' से 'ओमापोजनयथाचनः' तक (देखो पृष्ठ १००, १०१) १, २, ३.

ॐ शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑। शं योर॒भि स्र॑वन्तु नः ॥ ४ ॥ ओमीशा॑ना॒ वार्या॑णां॒ क्षय॑न्तीश्चर्षणी॒नाम्। अ॒पो या॑चामि भेष॒जम् ॥ ५ ॥ ओम॒प्सु मे॒ सोमो॑ अब्रवीद॒न्तर्विश्वा॑नि भेष॒जा। अ॒ग्निं च॑ वि॒श्वश॑म्भुवम् ॥ ६ ॥ ओमाप॑: पृणी॒त भे॑ष॒जं वरू॑थं त॒न्वे॒३ मम॑। ज्योक्च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥ ७ ॥ ओमि॒दमा॑प॒: प्र व॑हत॒ यत्किं च॑ दुरि॒तं मयि॑। यद्वा॒हम॑भिदु॒द्रोह॒ यद्वा॑ शे॒प उ॒तानृ॑तम् ॥ ८ ॥ ओमापो॑ अ॒द्यान्व॑चारिषं॒ रसे॑न॒ सम॑गस्महि। पय॑स्वानग्न॒ आग॑हि॒ तं मा॒ सं सृ॑ज॒ वर्च॑सा ॥ ९ ॥

ऋ० सं० अ० ७ अ० ६ व० ५।

फिर उक्त मन्त्रों के साथ ओमापोज्योतिः* अर्थात् शीर्ष मन्त्र से भी मार्जन करे।

अंक २०. अर्घ्यदानम्——ऋः वे० वाले प्रथम तीन वार गायत्री पढ़ तीन अर्घ्य निवेदन कर

* मध्याह्न औ सायंकालमें इस मन्त्र से आत्मपरिषेचन भी करे अर्थात् जल अपने चारो ओर छींट सर्वांग को पवित्र करे।

ॐ श्रीसवित्रे इदमर्घ्यं समर्पयामि। इस मन्त्र से समर्पण कर फिर ओमापोज्योती रसो० (देखो पृष्ठ ८५) और ॐ तेजोऽसि तेजोमयि धेहि इस से तेजआकर्षण* कर ओमसावादित्योब्रह्म पढ़ अर्घ्य प्रदान की क्रिया समाप्ति करें।

तत्पश्चात् फिर आचमन कर समस्तव्याहृतियों के साथ गायत्री मन्त्र से आसनोपवेशन कर अर्थात् फिर आसन पर बैठ तीन प्राणायाम कर केवल समव्याहृतियों से आत्माभ्युक्षण करें।

मध्याह्नकाल में नीचे लिखे मन्त्र से अर्घ्य देना चाहिये।

ॐ हंसःशुचिषद् (देखो पृष्ठ १६४)।

मध्याह्न और सायं में अर्घ्यप्रदान की और सब क्रियायें प्रातःसन्ध्याके समानही करनी होंगी।

अंक २१. सूर्योपस्थानम्।

तीनों काल में जो भेद है इस स्थान में विलग २ दिखलाया जाता है।

---

* तेजआकर्षण और आत्माभ्युक्षण ये दो क्रियायें ऋग्वेद वालों को अर्घ्यदान के साथ अधिक हैं।

ऋग्वेद प्रातरुपस्थानमन्त्राः ।

विनियोगः—ॐ जातवेदस इत्यस्य-मारीचः कश्यप ऋषिः । जातवेदा अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । सूर्योपस्थाने वि० ।

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निर्दहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ऋ० सं० अ० १ अ० ७ व० ७ ।

उक्त मन्त्र के साथ निचले सब मन्त्र प्रातरुपस्थान में पढ़े जावेंगे ।

विनियोगः—तच्छंयोरित्यस्य शंयुर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । शक्वरीछन्दः । सूर्योपस्थाने वि० ।

ॐ तच्छं योरावृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः । ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शंनो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

विनियोगः—नमोब्रह्मणइत्यस्य–प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवता। जगतीछन्दः। सूर्योपस्थाने वि०।

ॐ नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः। नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि॥

आ० गृह्यसूत्र अ० ३।

विनियोगः-मित्रस्येति चतसृणां-विश्वामित्र ऋषिः। मित्रोदेवता। गायत्रीछन्दः। सर्वेषां सूर्योपस्थाने वि०

ॐ मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसी। द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्॥ १॥ ओमभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः। अभि श्रवोभिः पृथिवीम्॥ २॥ ॐ मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे। स देवान्विश्वान्बिभर्ति॥३॥ ॐ मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे। इष इष्टव्रता अकः॥ ४

ऋ० सं० अ० ३ अ० ४ व० ६।

ऋग्वेद मध्याह्नोपस्थानमन्त्राः।

विनियोगः—ओमुदुत्यमिति त्रयोदशर्चस्य—का-

ण्वः प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्योदेवता । नवाद्या गायत्र्यो-न्त्या अनुष्टुप्छन्दः ॥ ॐ चित्रं देवानामिति षड् ऋचस्य—आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । सूर्योदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥ ॐ तच्चक्षुरित्यस्य—प्रगाथ ऋषिः । सूर्योदेवता । उष्णिक् छन्दः । सर्वेषां सूर्योपस्थाने विनियोगः ।

ओमुदुत्यं जातवेदसं (देखो पृष्ठ ११४) १

ओमप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ २ ॥ ओमदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ३ ॥ ॐ तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ४ ॥ ॐ प्रत्यङ्देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ५ ॥

ऋ० सं० अ० १ अ० ४ व० ७ ।

ॐ येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ ६ ॥ ॐ विद्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ ७ ॥ ॐ सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शो-

चिष्केशं विचक्षण ॥ ८ ॥ ओमयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ९ ॥ ओमुद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥ ओमुद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् । हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥ ॐ शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ॥ १२ ॥ ओमुदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ १३ ॥ (ऋ० सं० अ० १ अ० ४ व० ८)

ॐ चित्रं देवानामुद्० (देखो पृष्ठ ११४) १ ॐ सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् । यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ २ ॥ ॐ भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः । नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति

सधः ॥ ३ ॥ ओ३म् तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं संजभार । यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥ ओ३म् तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे । अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः संभरन्ति ॥ ५ ॥ ओमद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।६।

ऋ० सं० अ० १ अ० ८ व० ७

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं (देखो पृष्ठ ११५) ।

ऋग्वेद सायमुपस्थानमन्त्राः ।

ऋग्वेदवाले नीचे लिखे मन्त्रों से सायंकाल सूर्योपस्थान करें ।

ओ३म् जातवेदसे० । ओ३म् तच्छंयो० । ओ३म् नमो ब्रह्मणे० (पृष्ठ १८४, १८५) ओमिमं मे वरुण (पृष्ठ १६६) ओ३म् तत्त्वा यामि (पृष्ठ १६७) ।

विनियोगः—यच्चिद्धितेति दशर्चस्य—आजीगर्तिः । शुनःशेपऋषिः । वरुणोदेवता । गायत्रीछन्दः । सूर्योपस्थाने विनि० ।

ॐ यच्चिद्धि ते (देखो पृष्ठ १६७) ॥ १ ॥
ॐ मा नो॑ व॒धाय॑ ह॒त्नवे॑ जिहीळा॒नस्य॑ रीरधः ।
मा हृ॑णा॒नस्य॑ म॒न्यवे॑ ॥ २ ॥ ॐ वि मृ॑ळी॒काय॑ ते॒
मनो॑ र॒थीरश्वं॒ न संदि॑तम् । गी॒र्भिर्व॑रुण सीमहि ॥ ३ ॥
ॐ परा॑ हि॒मे वि॒मन्य॑वः॒ पत॑न्ति॒ वस्य॑इष्टये । वयो॒
न व॑स॒तीरुप॑ ॥ ४ ॥ ॐ क॒दा क्ष॑त्र॒श्रियं॒ न॒रमा॒ वरु॑णं
करामहे । मृ॒ळी॒काया॑रु॒चक्ष॑सम् ॥ ५ ॥

ऋ० सं० अ० १ अ० २ व० १६ ।

ॐ तदि॑त्स॒मान॑माशाते॒ वेन॑न्ता॒ न प्रयु॑च्छतः ।
धृ॒तव्र॑ताय दा॒शुषे॑ ॥ ६ ॥ ॐ वेदा॒ यो वी॒नां प॒द-
म॒न्तरि॑क्षेण॒ पत॑ताम् । वेद॑ ना॒वः स॑मु॒द्रियः॑ ॥ ७ ॥
ॐ वेद॑ मा॒सो धृ॒तव्र॑तो॒ द्वाद॑श प्र॒जाव॑तः । वेदा॒
य उ॑प॒जाय॑ते ॥ ८ ॥ ॐ वेद॒ वात॑स्य व॒र्तनि॑मु॒रो-
ऋ॒ष्वस्य॑ बृह॒तः । वेदा॒ ये अ॒ध्यास॑ते ॥ ९ ॥ ॐ निष॑-
साद धृ॒तव्र॑तो॒ वरु॑णः प॒स्त्या॒३॒॑स्वा । साम्रा॑ज्याय
सु॒क्रतुः॑ ॥१०॥ ऋ० सं० अ० १ अ० २ व० १७ ।

विनियोगः—ॐ मोषुवरुणेति पञ्चर्चस्य—वशिष्ठ

ऋषिः। वरुणोदेवता। गायत्रीछन्दः। सूर्योपस्थाने वि०।

ॐ मोषु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् मृडा सुक्षत्र मृडय ॥ १ ॥ ॐ यदेमि परस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातोऽद्रिवः। मृडा सुक्षत्र मृडय ॥ २ ॥ ॐ क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगम शुचे मृडा सुक्षत्र मृडय ॥ ३ ॥ ओमपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्। मृडा सुक्षत्र मृडय ॥ ४ ॥

ऋ० सं० अ० ५ अ० ६ व० ११।

ॐ यत्किंचेदं वरुण (देखो पृष्ठ १६७) ॥ ५ ॥

अंक २७. **गायत्रीषडङ्गन्यासः**—सब विधि माध्यन्दिन शाखावत् केवल तीसरे न्यास में जो थोड़ा भेद हैं वह नीचे जनादिया जाता है।

ॐ तत्सवितुर्हृदयाय नमः। वरेण्यं शिरसे स्वाहा। भर्गोदेवस्य शिखायै वषट्। धीमहि कवचाय हुम्। धियोयोनः नेत्रत्रयाय वौषट्। प्रचोदयात् अस्त्राय फट्।

अंक ३०. **गायत्रीध्यानम्—प्रातः**

काल का ध्यान---बालां बालादित्यमण्डल मध्यस्थां रक्तवर्णां रक्ताम्बरानुलेपनस्रगाभरणां चतुर्वक्त्रामष्टनेत्रां दण्डकमण्डल्वक्षसूत्राभयाङ्कचतुर्भुजां हंसासनारूढां ब्रह्मदैवत्यामृग्वेदमुदाहरन्तीं भूर्लोकाधिष्ठात्रीं गायत्रीं नामदेवतां ध्यायामि।

आगच्छ वरदे देवि जपे मे सन्निधौ भव।
गायन्तं त्रायसे यस्माद्गायत्री त्वं ततः स्मृता॥

मध्याह्नकाल का ध्यान।

ॐ युवतिं युवादित्यमण्डलमध्यस्थां श्वेतवर्णां श्वेताम्बरानुलेपनस्रगाभरणां पञ्चवक्त्रां प्रतिवक्त्रं त्रिनेत्रां चंद्रशेखरां त्रिशूलखड्गखट्वाङ्गडमरुकाङ्कचतुर्भुजां वृषभासनारूढां रुद्रदैवत्यां यजुर्वेदमुदाहरन्तीं भुवर्लोकाधिष्ठात्रीं सावित्रींनाम देवतां ध्यायामि॥

आगच्छ वरदे देवि जपे मे सन्निधौ भव।
सवितारं द्योतयसे सावित्री त्वं ततः स्मृता॥

सायंकाल का ध्यान।

वृद्धां वृद्धादित्यमण्डलमध्यस्थां श्यामवर्णां

श्यामाम्बरानुलेपनस्रगाभरणामेकवक्त्रां द्विनेत्रां शङ्ख-चक्रगदापद्माङ्कचतुर्भुजां गरुडासनारूढां विष्णु-दैवत्यां सामवेदमुदाहरन्तीं स्वर्लोकाधिष्ठात्रीं सरस्वतींनामदेवतां ध्यायामि ॥

आगच्छ वरदे देवि जपे मे सन्निधौ भव ।
ब्रह्मणः प्रसवित्री वाग्र् पत्वात्त्वं सरस्वती ॥

अंक ४०. सूर्यादिदिग्देवतानांनमस्काराः (वैसेही जैसे तैत्तिरीयशाखा में)।

अंक ४१. सन्ध्याविसर्जनम् ।

उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वत मूर्धनि ।
ब्राह्मणेभ्यो ऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥

ऋग्वेदवालों को विसर्जन के साथ, भद्रसंपादन एक क्रिया निम्न लिखित मन्त्र के साथ अधिक करनीहोगी।

विनियोगः—ॐ भद्रं न इत्यस्य—विमद ऋषिः। परमात्मा देवता। विराट्छन्दः। भद्रसंपादने वि०।

ॐ भद्रं नोऽअपिवातयमनः।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ऋ० सं० अ० ७ अ० ७ व० २ मं० १ ।

आसन्नलोकानन्यलोकान् द्युलोकालोकपर्वतान् ।
रक्षन्ति आत्मना देवास्तेभ्यो नित्यं नमो नमः ॥

अथ ५० ऋग्वेदे सन्ध्याभूस्पृष्टिकावन्दनम्

विनियोगः—ॐ स्योनापृथिवीत्यस्य—काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । भूमि देवता । गायत्रीछन्दः । भूमिवन्दने विनि० ।

ॐ स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी यच्छानः शर्मसप्रथः ॥

ऋ० सं० अ० १ अ० २ व० ६ ।

प्रातः मध्याह्न और सायं तीनों काल में उक्त प्रकारही सब क्रियायें करनी होंगी । इन तीनों काल में जहां २ थोड़े भेद हैं अपने २ स्थान पर स्पष्ट लिख दियेगये हैं ।

शेष सब अंक शु० य० मा० सन्ध्या के समानही हैं ।

इति ऋग्वेदीयसन्ध्याप्रयोगः

——:॥:——

सामवेदीयसन्ध्या विधिः ।

सब क्रियायें शु० य० म० सन्ध्या के अनुसारही करनी होगी, केवल अंक ७. आचमन । अंक २१. सूर्योपस्थान । अंक २८. गायत्र्यावाहन । में जो थोड़ी भिन्नता है इस स्थान में दिखलाई जाती है ।

अंक ७. आचमनम्—सामवेदवाले नीचे लिखे मन्त्रों से आचमन करें ।

विनियोगः—ओमन्तश्चरसि, शन्नआपो—इति द्वयोस्तिरश्चीन ऋषिः । अनुष्टुप्छन्दः । आपो देवता । आचमने विनि० ।

ओमन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपोज्योतीरसोऽमृतम् ॥ १ ॥
ॐ शन्न आपो धन्वन्याः शमनः सन्तु नूप्याः ।
शन्नः समुद्रिया आपः शमनः सन्तु कूप्याः ॥ २ ॥

अंक २१. सूर्योपस्थानम्—केवल दोहीं

मन्त्र उदुत्यंजातवेदसं* । चित्रंदेवानां । से करना होगा ।

अंक २८. गायत्र्यावाहनम्—निम्न लिखित मन्त्र से गायत्र्यावाहन करना होगा ।

विनियोगः—ॐ आयाहीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । गायत्री छन्दः । सविता देवता । गायत्र्यावाहने वि० ।

ॐ आयाहि वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि ।
गायत्रिच्छन्दसां मातर्ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते ॥

तीनों काल की सन्ध्या के लिये यही मन्त्र है केवल 'ब्रह्मवादिनि' के स्थान में मध्याह्नकाल 'रुद्रवादिनि' औ सायंकाल 'विष्णुवादिनि' कहना होगा और 'गायत्रिच्छन्दसां' के स्थान में मध्याह्नकाल 'सावित्रिछन्दसां' और सायंकाल 'सरस्वतिछन्दसां' कहना होगा ।

सामवेद वालों को कराऽस्पर्श अर्थात् आत्मरक्षा

---

* सामवेद चारों वेदों में श्रेष्ठ है, वेदानां सामवेदोऽहं गीता का वचन है, इसलिये इस वेद के एकही दो मन्त्र महान् पातकों से उद्धारकरनेवाले हैं । ये दोनों मन्त्र ऐसे श्रेष्ठ हैं कि सब वेद औ शाखावालों की सन्ध्या में आते हैं ।

औ रुद्रोपस्थान ये दो क्रियायें गायत्र्युपस्थान के साथ साथ अधिक करनी पड़ेंगी।

कर्णस्पर्शात्मरक्षामन्त्रः।

विनियोगः—ॐ जातवेदस इत्यस्य-काश्यपऋषिः। जातवेदाग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। आत्मरक्षायां वि०।

ॐ जातवेदसे सुनवाम (देखो पृष्ठ १८४)

रुद्रोपस्थानमन्त्रः।

विनियोगः—ओमृतंसत्यमित्यस्य—कालाग्निरुद्र ऋषिः। रुद्रोदेवता। अनुष्टुप्छन्दः। रुद्रोपस्थाने वि०।

ओमृतंसत्यं परंब्रह्मपुरुषं कृष्णपिङ्गल मूर्ध्वलिङ्गं विश्वरूपं नमोनमः।

शेष सब क्रियायें तीनों काल में माध्यन्दिनशाखा के समान हैं।

इति सामवेदीयसन्ध्याप्रयोगः।

अथर्ववेदीयसन्ध्या विधिः ।

अथर्ववेद वालों को सब क्रियायें शु० य० मा० सन्ध्या के अनुसारही करनी पड़ेगी केवल, अंक ७. आचमन । अंक ८. प्राणायाम । अंक १३ मार्जन । अंक २०. अर्घ्यप्रदान । अंक २१. सूर्योपस्थान । मन्त्रों को जो कुछ भिन्नता है इस स्थान में स्पष्ट कर दीजाती है ।

अंक ७ आचमनम्—ओममृतमस्यमृतोपस्तरणमस्य मृताय त्वोपस्तृणामि ॥ इस मन्त्र में आचमन निमित्त हाथ में जल ले नीचे लिखे तीनों मन्त्रों से तीन आचमन कर चौथे मन्त्र से इन्द्रियस्पर्श अर्थात् मुख, नासिका, चक्षु, कान, नाभी, हृदय इत्यादि स्पर्श करे ।

विनियोगः— ॐ जीवास्थ इति चतसृणां—ब्रह्मा ऋषिः । आपो देवता । अनुष्टुबृहत्यगायत्र्युष्णिक् छन्दांसि आचमने विनि० ।

ॐ जीवास्थजीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥
ओमुपजीवास्थोपजीव्यासं सर्वमायु० ॥२॥
ॐ संजीवास्थसंजीव्यासं सर्वमायु० ॥३॥

इन तीनों से आचमन कर निचले मन्त्र से इन्द्रिय-स्पर्श करे।

ॐ जीवलास्थजीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥

अंक ८. प्राणायामः---

विनियोगः—वैसेही जैसे यजुः माध्यन्दिन में।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ जनत् ॐ वृद्धत् ॐ करत् ॐ रुहत् ॐ महत् ॐ तत् ॐ शं ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ओमापो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥

अंक १३. मार्जनम्----निम्नलिखित मन्त्रों से मार्जन करे।

विनियोगः—ओमापोहिष्ठेति शन्नोदेवी सूक्तद्वयस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। सोमापौ देवते। सप्तगायत्र्यः छन्दांसि अन्त्याऽथर्वाकृतिः। मार्जने विनि०।

ओमापोहिष्ठा (देखो पृष्ठ १००) ओमाशानावार्याणां से वर्चसा तक (देखो पृष्ठ १८२) ॐ शन्न आपो धन्वन्याः (देखो सामवेदीय पृष्ठ १६४) ॐ शं नः खनित्रिमा आशमु याकुंभ आभृता। शिवानः सन्तु वार्षिकी ॥ इन मन्त्रों से मार्जन करे

अंक २०. अर्घ्यदानम्।

प्रातरर्घ्यदानमन्त्रः।

विनियोगः—ॐ हरिःसुपर्णेति मन्त्रस्य—ब्रह्मा ऋषिः। जातवेदः सूर्योदेवता। जगतीछन्दः। अर्घ्यप्रदाने विनियोगः।

ॐ हरिः सुपर्णो दिवमारुहोर्चिषा ये त्वा दिप्संति दिवमुत्पतन्तम्। अयतं जहिहरसा जातवेदो विभ्यदुग्रोर्चिषा दिवमरोह सूर्य। श्रीमित्राय -इदमर्घ्यं न मम ॥

मध्याह्नार्घ्यदानमन्त्रः ।

ओमुदुत्यं जातवेदसम् और चित्रं देवानाम् (देखो पृष्ठ ११४), इन दोनों से मध्याह्न अर्घ्य देवे ।

सायमर्घ्यदानमन्त्रः ।

विनियोगः—ओमयोजालेति मन्त्रस्य-ब्रह्मा ऋषिः । जातवेदः सूर्योदेवता । जगतीछन्दः अर्घ्यदाने विनि० ।

ओमयोजाला असुरा मायिनोयस्मयैः । पाशैरङ्किनो ये चरन्ति । तांस्ते रन्धयामिहरसा जातवेदः सहस्त्रऋष्टिः सपत्नान्प्रमृणान्पाहिवज्रः ॥ श्रीब्रह्मार्पणमिदमर्घ्यं न मम ॥

अंक २१. सूर्योपस्थानम् ।

प्रातरुपस्थानमन्त्रः ।

विनियोगः—ओमभयंन इतिमन्त्रस्य—ब्रह्मा ऋषिः । सूर्योदेवता । जगतीछन्दः । प्रातरुपस्थाने वि० ।

ओमभयं नः करोत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभ इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्त-

गन्धराद्भयं नोऽस्तु ॥ १ ॥ अभयं मित्रादभयं मित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशामम मित्रं भवन्तु ॥ २ ॥

मध्याह्नोपस्थानमन्त्रः ।

ॐ उद्वयन्तमसः (देखो पृष्ठ ११४।)

इसी मन्त्र से मध्याह्न उपस्थान करना ।

सायमुपस्थानमन्त्रः ।

विनियोगः—ओमुद्देतिमन्त्रस्य—विश्वामित्र ऋषिः । सूर्यो देवता । गायत्रीछन्दः । सूर्योपस्थाने वि० ।

ओमुद्देभिश्रुतामघं वृषभं नर्यापसं । अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥ नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहा वधीत् ॥ २ ॥ स न इन्द्रः शिवः । सखा श्ववत् गोमद्यवमदुरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥

अथर्ववेदवालों को एक क्रिया अर्थात् कर्मारम्भ नीचे लिखे मन्त्र से अधिक करना होगा ।

विनियोगः—ओमव्ययश्चेति मन्त्रस्य,—ब्रह्मा ऋषिः । लिङ्गोक्त देवता । अनुष्टुप्छन्दः । सर्वकर्मारम्भे वि० ।

ओमग्यसश्च व्यचसश्च विलं विष्यामि मा यया।
ताभ्रमुद्धृत्य वेदमथकर्माणि कृण्महे ॥

शेष सब क्रियायें तीनों कालकी माध्यन्दिन सन्ध्या के समान जानना।

इति अथर्ववेदीयसन्ध्याप्रयोगः।

संक्षिप्तसन्ध्याविधिः

विदित हो कि बृहत्सन्ध्याविधि की सब क्रियाओं को विधिपूर्वक करने का अवकाश जिन पुरुषों को न मिले वे केवल संक्षिप्तसन्ध्या अर्थात् सन्ध्या के सेग्रह ही अङ्गों को नीचे लिखी रीति से करलिया करें। इनके दिवारात्रि के पापों की निवृत्ति होती रहेगी।

१. शिखाबन्धनम्—केवल गायत्री मन्त्र से।

२. संकल्पः—ॐ तत्सत्सन्ध्योपासनं० से (पृष्ठ९७)

३. आचमनम्— प्रातःकाल । ॐ सूर्यश्चमामन्युश्च० से। (देखोपृष्ठ १०२)

मध्याह्नकाल। ओमापः पुनन्तु० से। (देखो पृष्ठ १५५)

सायंकाल। ओमग्निश्चमामन्युश्च० से। (देखो पृष्ठ १५७)

४. मार्जनम्—ओमापोहिष्ठा० से। (देखो पृष्ठ १००)

५. अघमर्षणम्—ओमृतञ्चसत्यञ्च० से (देखो पृष्ठ १०८)

६. अर्घ्यप्रदानम्——केवल गायत्री से।

७. सूर्योपस्थानम्—ओमुद्वयम्। ओमुदुत्यम्। ॐ चित्रं देवानाम्। ॐ तच्चक्षुः इन चारों मन्त्र से (देखो पृष्ठ ११४, ११५)।

८. सूर्यप्रदक्षिणा—ॐ सूर्यस्यावृतं०। (दे.पृ. १६१)

९. चतुर्विंशति मुद्रा—सुमुखं। संपुटं। इत्यादि से। (देखो पृष्ठ ११८)

१०. प्राणायामः—(देखो पृष्ठ ८४)

११. गायत्रीजपः—देखो लालपत्र (ख)

१२ अष्टमुद्राप्रदर्शनम्—सुरभिर्ज्ञान०। (देखो पृष्ठ १४१ से १४३ तक)

१३. गायत्री विसर्जनम्—उत्तरेशिखरे० (देखो पृष्ठ १८७

किसी वेद और किसी शाखा का पुरुष हो उक्त प्रकारही केवल तेरह ही अङ्ग से तीनों काल की सन्ध्या करलिया करे।

☞ इस बृहत्सन्ध्या में । अंक ३ भूतशुद्धिः । अंक २७ षडङ्गन्यास । अंक ३३ गायत्रीशापविमोचन । अंक ३४ गायत्र्याः शापहरण । अंक ४१ प्रार्थना । अंक ४३ मन्त्रोच्चारण । अंक ४४ अभिवादन । अंक ४९ गायत्रीतर्पण । ये कर्म यद्यपि पौराणिक औ तान्त्रिक हैं तथापि वैदिक सन्ध्या वाले भी यदि करलिया करें तो अति उत्तम है क्योंकि अधिकस्याधिकं फलम् नहीं तो संक्षिप्त सन्ध्या तो उनके सामने रक्खीही हुई है ।

इति वैदिकबृहत्सन्ध्या समाप्ता ।